1. प्रेम मुक्ति है
2. प्रेम में पूर्णतया खो जाना ही प्रभु को पा लेना है
3. प्रेम शब्दों में कहा भी कहां जाता है!
4. प्रेम को प्रार्थना बना
5. प्रेम, प्रार्थना और परमात्मा
6. मेरा प्रेम ही तो मेरा उत्तर है
7. हृदय की भाषा है--प्रेम
8. प्रेम में अहंकार और वासना का विसर्जन
9. आनंद--प्रेम की पीड़ा का
10. वृहत्तर मनुष्यता के लिए जीने की विधि और प्रयोग
11. मात्र जीए जाता हूं
12. सत्य स्वयं ही अपने सैनिक चुन लेता है
13. परिस्थिति नहीं--मनःस्थिति का परिवर्तन करें
14. चाहिए संकल्प--श्रम, धैर्य और प्रतीक्षा
15. अब तो सबकी व्यथा ही मेरी व्यथा बन गयी है
16. जीवन एक न सुलझने वाली--सुलझी हुई पहेली
17. तेरे ही हाथों मग तेरा भाग्य है
18. व्यक्तित्व की सुवास
19. आमूल जीवन-क्रांति को मैं संन्यस्त कहता हूं
20. अनंत और स्वयं के बीच बाधा--मैं की मूर्च्छा
21. शरीर और इंद्रियों से परे--हृदय के स्वर
22. मैं--मेरे नहीं--सत्य के मित्र चाहता हूं
23. प्यास ही प्रार्थना है
24. मैं तो मिट ही गया हूं
25. स्त्रियों में विद्रोही आत्मा के जागरण की आवश्यकता
26. अनित्य पर ही ध्यान रखना है
27. परिचय--विगत जन्मों का
28. सार्थक संवाद--निःशब्द में ही
29. स्वीकार भाव
30. जड़-मूल से सब बदल डालना है
31. मन--एक असहजता
32. जीवन है अनंत रहस्य
33. भोग और दमन के बीच में द्वार है: जागरण का
34. सत्य को जानने और पचाने की भी पात्रता चाहिए
35. चुप हो--और जान
36. असंभव की चुनौती में ही परमात्मा का जन्म है
37. साधना के पथ पर शत्रु भी मित्र हैं
38. अज्ञानी होने की तैयारी में वास्तविक ज्ञान का जन्म
39. बाल-बुद्धि से ऊपर उठना ही होगा
40. स्वयं का बचाव नहीं: बदलाहट करनी है
41. स्वयं को स्वीकारें
42. चलो तो मार्ग बनता है।
43. ईश्वर की पुकार से भर गए प्राणों में: संन्यास का अवतरण
44. स्वयं को खोने की तैयारी
45. विचारों से गुजर कर विचार का अतिक्रमण
46. संकल्प की पूर्णता में या संकल्प की शून्यता में--समर्पण घटित
47. ध्यान है अमृत--ध्यान है जीवन
48. संन्यास की आत्मा: स्वतंत्रता में
49. विवादों का सर्वश्रेष्ठ: प्रत्युत्तर: मौन
50. जीवन: एक खेल, एक अभिनय
51. आत्मीय निकटता का रहस्य-सूत्र
52. एक ही सत्य के अनंत हैं प्रतिफलन
53. मैं-मेरे के भ्रम का बोध

2

54. [illegible], [illegible]?
55. [illegible]
56. [illegible]--[illegible]
57. [illegible]-[illegible]
58.... [illegible]
59. [illegible]
60. [illegible]
61. [illegible]-[illegible]
62. [illegible]-[illegible]-[illegible]
63. [illegible]
64. [illegible]
65. [illegible]--[illegible], [illegible]
66. [illegible]
67. [illegible]: [illegible]
68. [illegible]--[illegible]
69. [illegible]
70. [illegible]?
71. [illegible]: [illegible]
72. [illegible]
73. [illegible]
74. [illegible]--[illegible]
75. [illegible]--[illegible]?
76. [illegible]--[illegible]-[illegible]
77. [illegible]
78. [illegible]
79. [illegible]
80. [illegible]--[illegible]
81. [illegible]
82. [illegible]
83. [illegible]
84. [illegible]-[illegible]
85. [illegible]
86. [illegible]
87. [illegible]
88. [illegible] ([illegible]) [illegible]!
89. [illegible]--[illegible]
90. [illegible]
91. [illegible]
92. [illegible]
93. [illegible]
94. [illegible]?
95. [illegible], [illegible]?
96. [illegible]--[illegible]-[illegible]-[illegible]
97. [illegible], [illegible]
98. [illegible], [illegible]
99. [illegible]
100. [illegible]
101. [illegible]-[illegible]
102. [illegible]
103. [illegible]
104. [illegible], [illegible]
105. [illegible]
106. [illegible]- [illegible]

107. पीड़ा - बीज के अंकुरित होने की
108. अब व्यर्थ की बातों में न पड़
109. सत्य और स्वप्न भी दो नहीं हैं
110. ध्यान पर अथक श्रम - फलाकांक्षा -रहित
111. बुद्धि में मत उलझ --तू तो सीधे ध्यान में जा
112. जीवन उलझन नहीं --मनुष्य ही उलटा है
113. साक्षी में ही समाधान है
114. जगाए रखो संकल्प को
115. ध्यान से प्रश्नों की निर्जरा
116. संन्यास में छलांग
117. याचना प्रार्थना की हत्या है
118. संतुलन : विचार और भाव में , तर्क और श्रद्धा में
119. ध्यान की गहराई के साथ ही संन्यास -चेतना का आगमन
120. गहरे ध्यान के बाद ही जाति -स्मरण का प्रयोग
121. उसके लिए द्वार खुला छोड़ दो स्वयं का
122. मौन के तारों से भर उठेगा हृदयाकाश
123. बहुत देर हो चुकी है --आ जाएं अब
124. आज ही तुम्हारा जीवन है
125. मध्य में संभालना स्वयं को
126. अदृश्य और अज्ञात में छलांग
127. अहंकार की सूक्ष्म लीला को पहचाना
128. गंभीरता का रोग और जीवन का हल्कापन
129. विचार किया बहुत --अब ध्यान करें
130. उद्देश्य नहीं -खोजो जीवन को ही
131. खूंटिया उखाड़ें : जंजीरें छोड़ें
132. स्वयं का रूपांतरण ही तपश्चर्या है
133. चाहिए पागल प्रेम --सरल श्रद्धा और समग्र स्वीकृति
134. स्वयं से मिलने के पहले बहुत कुछ आएगा और जाएगा
135. रत्ती भर अहंकार --और सब बेकार
136. धैर्य और साक्षीत्व --साधक के पाथेय
137. चेतना के प्रतिक्रमण का रहस्य -सूत्र
138. ध्यान करें --चिंतन नहीं
139. ध्यान --धर्म अर्थात मृत से अमृत की यात्रा
140. व्यक्तित्व के आमूल रूपांतरण पर ही प्रेम घटित
141. काम रसायनिक है --और प्रेम आध्यात्मिक
142. अप्रेम के कांटे और प्रेम के फूल
143. मिटने की तैयारी ही है --प्रेम को पाने की कुंजी
144. बेशर्त , अपेक्षारहित प्रेम की सुवास
145. प्रेम को पूजा बना
146. प्रतीक्षारत प्रेम प्रार्थना बन जाता है
147. प्रेम प्रार्थना बनते ही दिव्य हो जाता है।
148. साकार प्रेम और निराकार प्रार्थना
149. प्रेम -गली अति सांकरी
150. ढाई आखर प्रेम का , पढ़े सो पंडित होय

1 / प्रेम मुक्ति है

प्यारी शोभना ,

प्रेम। मेरा दूसरा पत्र।

तू मेरी कितनी अपनी है --इसे कहने को कोई भी मार्ग नहीं है।

इसलिए तू पूछे ही न तो अच्छा है।

और पागल! मुझे देने के लिए तू कुछ भी न खोज पाएगी --क्योंकि तेरे पास है ही क्या जो तूने नहीं दे दिया है ?

प्रेम पूर्ण से कम कुछ भी नहीं लेना है।
इसलिए ही तो वह मुक्ति है।
क्योंकि वह पीछे शून्य कर जाता है।
या कि पूर्ण।
वैसे--शून्य या पूर्ण एक ही सत्य को कहने के लिए दो शब्द हैं।
शब्दकोश में वे विरोधी हैं, लेकिन सत्य में पर्यायवाची।
मैं तेरे द्वारा पर किसी भी दिन उपस्थित हो जाऊंगा।
लेकिन वह तेरे द्वारा जैसा मेरे मन में नहीं आता है।
लगता हैः मेरा घर--मेरा द्वार!
गड़बड़ हो गई है!
मेरी शोभना के कारण ही सब गड़बड़ हो गई है!

रजनीश के प्रणाम
18-7-1968

(प्रतिः सुश्री शोभना, अब मा योग शोभना, बंबई)

2 / प्रेम में पूर्णतया खो जाना ही प्रभु को पा लेना है

प्यारी दुलारी,
प्रेम। तेरा पत्र।
इतने प्रेम से भरी बातें तूने लिखी हैं कि एक-एक शब्द मीठा हो गया है। क्या तुझे पता है कि जीवन में प्रेम के अतिरिक्त न कोई मिठास है, न कोई सुवास है।
शायद प्रेम के अतिरिक्त और कोई अमृत नहीं है!
कांटों में भी फूल खिलते हैं--वे शायद प्रेम से खिलते हैं।
और मृत्यु से घिरे जगत में जो जीवन का संगीत जन्मता है--वह शायद प्रेम
से ही जन्मता है।
लेकिन, आश्चर्य है तो यही कि अधिकतर लोग बिना प्रेम के ही जिए चले जाते हैं।
निश्चय, आश्चर्य है तो यही कि अधिकतम लोग बिना प्रेम के ही जिए चले जाते है।
निश्चय ही उनका जीवन जीवित-मृत्यु ही हो सकता है।
मैं यह जान कर आनंदित हूं कि तू प्रेम के मंदिर के निकट पहुंच रही है।
प्रेम की गहराइयों में उतर जाना ही प्रार्थना है।
और प्रेम में पूर्णतया खो जाना ही प्रभु को पा लेना है।

रजनीश के प्रणाम
30-6-1968

(प्रतिः श्रीमती श्याम दुलारी, बंबई)

3 / प्रेम शब्दों में कहा भी कहां जाता है!

प्यारी दुलारी,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
पागल! पत्र में क्या लिखना है, यह बहुत सोचा-विचारा मत कर।
बस जो मन में आया सो लिख दिया।
और कुछ न सूझे तो खाली कागज ही भेज दिया!
मैं तो उसे भी पढ़ लूंगा--वैसे प्रेम शब्दों में कहा भी कहां जाता है!

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सत्य है, सुंदर है, वह सभी शब्दों की कैद से मुक्त है।
उसे तो कहना नहीं, जीना ही होता है।
और मैं जानता हूं कि तू जीने की राह पर चल पड़ी है।
शेष मिलने पर।

रजनीश के प्रणाम
16-7-1968

(प्रतिः श्रीमती श्याम दुलारी, बंबई)

4 / प्रेम को प्रार्थना बना

प्यारी पुष्पा,
प्रेम। तेरा पत्र।
पागल ! प्रेम सब पर चाहिए।
किसी एक पर बांधने की क्या जरूरत है?
प्रेम जहां बंधा, वहीं मोह हो जाता है।
प्रेम जहां असीम है, वहीं प्रार्थना बन जाता है।
प्रेम को प्रार्थना बना।
वही प्रेम प्रभु का द्वार है

रजनीश के प्रणाम
13-12-1968

(प्रतिः कुमारी पुष्पा पंजाबी, अब मा धर्मज्योति, बंबई)

5 / प्रेम, प्रार्थना और परमात्मा

प्यारी दुर्गा,
प्रेम। तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
तेरे जीवन में प्रेम, प्रार्थना और परमात्मा के फूल क्रमशः विकसित होते रहें, यही मेरी कामना है।
प्रेम प्रेम पर रुके तो मर जाता है।
प्रेम को प्रार्थना बनना चाहिए।
और प्रार्थना भी स्वयं पर रुके तो जड़ हो जाती है
उसे परमात्मा बनना चाहिए।
परमात्मा ही सिर्फ स्वयं पर रुक सकता है।
क्यों कि वह अनादि है, अनंत है।
क्योंकि वह पूर्ण है।
क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
15-6-1969

(प्रतिः श्रीमती दुर्गा, बंबई)

6 / मेरा प्रेम ही तो मेरा उत्तर है

प्यारी अनसूया,
प्रेम। तेरे सब पत्र यथासमय मिल गए थे।
यह भी मैं जानता हूं कि तू उत्तर की कितनी प्रतीक्षा करती होगी? लेकिन मेरी व्यस्तता तो देखती है न?
चाहकर भी उत्तर नहीं लिख पाता हूं।
फिर मेरा प्रेम ही तो मेरा उत्तर है।
और वह तो मैं निरंतर ही भेजता रहता हूं।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम
29-7-1969

(प्रतिः सुश्री अनसूया, बंबई)

7 / हृदय की भाषा है--प्रेम

मेरे प्रिय,
पत्र मिला है। आपकी जिज्ञासा से आनंदित हूं। आप जीवन के प्रत्येक अंग
पर सोच-विचार करते हैं, यह अच्छा है। इतना ही स्मरण रखें कि जीवन सोच-विचार मात्र ही नहीं है। उसमें बहुत कुछ जो बहुमूल्य है, वह बुद्धि से नहीं हृदय से आता है। और हृदय का अपना स्थान है, जो बुद्धि कभी नहीं ले सकती है। बुद्धि के ऊपर हृदय की भाषी भी है। उस भाषा को ही मैं प्रेम कहता हूं। और वही परमात्मा तक ले जाने की सीढ़ी बनती है।
सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
17-10-1969

(प्रतिः श्री जयंती भाई, बंबई)

8 / प्रेम में अहंकार और वासना का विसर्जन

प्रिय चंदन,
मैं प्रवास में था। लौटा हूं तो तुम्हारा पत्र मिला है। आशा थी कि आया होगा। सो आते ही पत्रों के ढेर में सब से पहले उसे खोजा। यह तुमने क्या लिखा है कि कहीं मुझे पत्रों के लिखने में कष्ट तो नहीं हो रहा है। तुम्हारी जीवन-यात्रा में किंचित भी सहयोगी हो सकूं तो मुझे जो आनंद मिलेगा, उसे शब्द देना संभव नहीं है। प्रेम न तो कष्ट जानता है और न भार। प्रेम तो निर्भार है। आनंद के अतिरिक्त उसकी और कोई अनुभूति ही नहीं है। क्या मेरे इस प्रेम का तुम्हें अनुभव नहीं होता है,? जो मेरे हृदय से पहाड़ी झरनों की भांति सतत बहा जाता है, निश्चय ही उसकी प्रतिध्वनियां तुम्हारे हृदय को भी तो स्पर्श करती ही होंगी? भीतर खोजना। प्रेम का परमात्मा वहां सदा द्दी उपस्थित है। प्रेम के दिव्य आलोक को खोकर ही मनुष्य स्वयं को खो देता है। मैं आत्मा की, मोक्ष की खोज को मूलतः प्रेम की ही खोज मानता हूं। प्रेम के प्रहार में ही अहंकार गलत है और आत्मा उपलब्ध होती है। और प्रेम के प्रहार में ही वासना के बंधन टूटने और मोक्ष के द्वार खुलते हैं।
प्रेम का प्रकाश के लिए आमंत्रण है और जो प्रेम के विपरीत चलता है, वह अपने ही हाथों परमात्मा से दूर होता जाता है।

प्रेम या अहंकार--जीवन दो ही दिशाएं हैं और परिणाम भी दो ही है--मोक्ष
या मृत्यु।
प्रेम को खोजो। शेष सब उसके पीछे अपने आप चला आता है, और स्मरण रहे कि प्रभु के शत्रु हैं--राग और विराग। राग और विराग दोनों से उपराम हुए चित्त में प्रेम का जन्म होता है।
पूना आता हूं तो तुम्हारे लिए ज्यादा से ज्यादा समय निकालूंगा।
उद्विग्नता निश्चित ही मिटेगा। भोर के पूर्व रात्रि का अंधकार गहरा हो ही जाता है।
सबको प्रेम और प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
4-7-1966 (प्रभात)

(प्रतिः साध्वी चंदना, पूना)

9 आनंद--प्रेम की पीड़ा का

प्यारी शोभना,
प्रेम। तेरा पत्र निश्चय ही विरह में आनंद के साथ-साथ पीड़ा भी है; लेकिन वह पीड़ा भी आनंद है।
प्रेम की पीड़ा से बड़ा और गहरा आनंद और कहां हो सकता है?
प्रेम की पीड़ा से गुजर कर सारा व्यक्तित्व ही कुंदन हो जाता है।
और मैं आनंदित हूं कि तू उससे गुजर रही है।

॰॰॰

कहती है कि मेरे आगे तू बलशाली नहीं रह पाती है?
कमजोर हो जाती है?
शत्रु के सामने बलशाली हुआ जा सकता है।
मेरे सामने कैसे?
क्या मैं तेरा इतना अपना नहीं हूं कि मेरे सामने तेरे होने की भी जरूरत न रहे?
देखनाः अभी कमजोर पड़ती है, फिर धीरे-धीरे मिट ही जाएगी।

रजनीश के प्रणाम
28-6-1976 (प्रभात)

(प्रतिः सुश्री शोभना, अब मा योग शोभना, बंबई)

10 / वृहत्तर मनुष्यता के लिए जीने की विधि और प्रयोग

प्यारी मौनू,
तेरा पत्र। मैं आनंदित हूं कि तू मात्र जीती ही नहीं, वरन जीवन पर सोचती भी है। स्वयं पर निरंतर विचार से ही परिष्कार होता है। किंतु बहुत कम लोग है जो सोचते हैं और इसलिए अधिकतर लोग वैसे ही समाप्त होते हैं, जैसे कि पैदा हुए थे।
मनुष्य के चित्त के संबंध में सर्वाधिक जानने योग्य बात यह है कि उसमें बहुत कुछ समाज का संस्कार है। व्यक्ति मात्र व्यक्ति ही नहीं है। बहुत कुछ उसमें समाज है। और स्वयं में छिपे इस समाज से छुटकारा बड़ी से बड़ी

कठिनाई है। क्योंकि सामाजिक संस्कारों की यह पर्त व्यक्ति को स्वयं की ही सत्ता मालूम होने लगती है।
प्रेम तेरा असंदिग्ध है। निश्चय ही उसे मुझसे भी ज्यादा मैं जानता हूं। क्योंकि मैंने उसे पाया है। और ऐसी स्थितियों में पाया है जब कि न होता तो उसके होने के भ्रम में बने रहने का कोई भी कारण नहीं था। मैं जैसा हूं, उस व्यक्ति के साथ प्रेम के अभाव में बिना प्रेम के एक क्षण भी बने रहना संभव था। मेरे अतिरिक्त तो तेरे पास कुछ भी नहीं है। फिर मेरे साथ सिवाय दुख के और तूने पाया ही क्या है? और तूने स्वयं जान कर मुझे कभी दुख दिया है, इसका मुझे अनुभव नहीं। अनजाने पहुंचे दुख से तू ही और पछताई और दुखी हुई है।
मैं तुझमें ईर्ष्या भी नहीं पाता हूं। क्योंकि ईर्ष्या होती तो इसके
तो मेरे साथ निरंतर अवसर थे। उसके होने पर मेरे प्रति तेरा लगाव समाप्त होता और मेरे प्रति घृणा जगती। लेकिन लगाव तेरा बढ़ा है और मेरे प्रति तेरे हृदय में घृणा की तो मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता हूं। वहां तो प्रेम और मंगल-कामना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसी प्रेम ने तुझे सब कुछ सहने का बल भी दिया है। फिर कौन सी बात तुझे कष्ट देती है? कष्ट दे रहा है चित्त की अचेतन पर्तों में हजारों वर्षों के समाज के संस्कारों का भार। निश्चय ही निरंतर उससे तू लड़ रही है। और जीत भी रही है इस दिशा में जो परिवर्तन तूने किया है, वह कोई दूसरा तेरी जगह नहीं कर सकता था। क्योंकि किसी दूसरे का ऐसा और इतना प्रेम मेरे प्रति नहीं है कि वह उसके लिए स्वयं को बदलने को राजी हो जावे। किसी के लिए मरना आसान है, लेकिन स्वयं को बदलना बहुत कठिन है। मरने में तो फिर भी अहं की तृप्ति है। बदलने में तो अहंकार बिल्कुल ही जाता है। और जहां गहरा और सच्चा प्रेम है, वहां अहंकार की कुर्बानी की जा सकती है। तूने वह किया है। और निरंतर कर रही है।
यह भी मैं जानता हूं कि प्रेम के संबंध में मेरी दृष्टि अत्यधिक असामान्य है और उसके लिए मनुष्य को तैयार होने में हजारों वर्ष लगेंगे। इसलिए मेरे साथ जिसे प्रेम को जीना पड़ रहा है, उसकी कठिनाई को मैं जानता हूं। और इसलिए तेरे प्रति मेरे हृदय में कैसी सराहना है, उसे कहा नहीं जा सकता है। तेरे परिवर्तन और चित्त में आ रहे हलकेपन को देख कर मुझे आशा भी बंधती है कि कभी न कभी अधिकतम मनुष्य भी यह कर सकेंगे। जिस दिन प्रेम की रुढ़िबद्ध धारणाओं से तुझे पूर्णतया मुक्त देखूंगा, उस क्षण मेरे समक्ष मनुष्य-चित्त क्या कर सकता है, इसकी भी मुझे गवाही मिल जाएगी।
मेरे जीवन स्वयं का जीना मात्र ही नहीं है। वह वृहत्तर मनुष्यता के लिए जीने की विधि और प्रयोग भी है। और जो मेरे है और मेरे साथ हैं, उन्हें बहुत सी अग्नियों में से गुजरना है। हो सकता है मैं पागल ही होऊं और जो कहता और जीता हूं, वह सब गलत ही हो; फिर भी मैं प्रयोग तो करूंगा, ही, परिणाम ही उसकी सच्चाई या झूठ का प्रमाणित कर सकते हैं। यह बात निश्चित है कि प्रेम के प्रति मनुष्य की प्रचलित धारणा जरूर कहीं गलत है, क्योंकि वह सिवाय दुःख के और कुछ भी नहीं लाती है। उसकी सफलता तो दुख है ही, उसकी सफलता भी दुख है। इसलिए प्रेम की नई दृष्टि तो मनुष्य को खोजनी ही होगी। यदि मेरे विचार उस दिशा में कुछ भी प्रकाश डाल सकें तो भी बहुत है। यदि वे गलत ही सिद्ध हो तो भी वे किसी और दिशा में ही सही, लेकिन विचार के लिए जागरण का कारण तो बन ही सकेंगे।
जहां तक मेरा संबंध है, मैं स्वयं के दर्शन के ठीक होने में आश्वस्त हूं, क्योंकि वह तो मेरे चित्त को अत्यधिक शांति और आनंद और प्रेम से भर रहा है। तू इन सारे प्रयोगों में मेरा साथ दे रही है। तेरा अनुग्रह मानूं? क्योंकि जो मेरे लिए आनंद है, वह तो तेरे लिए मेरे प्रेम के कारण ही करना पड़ रहा है, लेकिन एक बात जान रख कि एक दिन वह तेरे लिए भी आनंद का कारण बनेगा। और क्या कहूं? जितनी तू शांत और सरल और संस्कार-मुक्त होगी, उतना ही मेरा विचार तेरे समक्ष स्पष्ट होगा। एक दिन तू निश्चय ही जानेगी कि मेरे हृदय में तेरे लिए क्या है?

तेरा अपना

रजनीश

(प्रतिः सुश्री मौनू (क्रांति), जबलपुर)

11 / मात्र जीए जाता हूं

प्रिय जयंती भाई,

प्रेम।

आपका पत्र पाकर आनंदित और अनुगृहीत हूं।

अभी तो ऐसा ही चल रहा है कि जितनी अपनी शक्ति और श्रम से संभव है, उतना कर रहा हूं।

जीवन किसी भी भांति सर्वहित में काम आ जावे तो वही मेरे कृतार्थता होगी।

पर जैसा आपने लिखा हैः कुछ सोचना होगा। अत्यधिक व्यस्तता और प्रवास हानि तो पहुंचा ही रहा है। फिर आप सबके प्रेम को स्मरण करता हूं तो ख्याल आता है कि परमात्मा उसके द्वारा कोई मार्ग भी निकाल ही लेगा।

वैसे अपनी ओर से तो मात्र जिए जाता हूं और जो बनता है वह किए जाता हूं।

वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

अब तो जल्दी ही आप सब मिलने को हैं।

महेंद्र और अनूपभाई कैसे हैं?

रजनीश के प्रणाम

21-1-1966

(प्रतिः जयंतीभाई, बंबई)

12 / सत्य स्वयं ही अपने सैनिक चुन लेता है

प्रिय जयंतीभाई,

आपको प्रेमपूर्ण पत्र और चित्र मिले हैं।

मैं आपको पराया कब मानता हूं?

आप ही पराए होंगे तो अपना किसे कहूंगा? निश्चय ही आपकी शक्ति को मुझे काम में लेना ही होगा। फिर यह काम मेरा तो है नहीं। है तो परमात्मा का ही। वही आपको भी प्रेरणा दे रहा है। अन्यथा मेरी क्या बात है? इस बार आता हूं तो आपसे बात करूंगा। निश्चय ही प्रभु की इच्छा है कि कुछ हो। उस इच्छा में उपकरण बनना है। बहुतों को अपना श्रम और शक्ति देनी होगी। किंतु मैं स्वयं किसी से कुछ भी नहीं कह सकता हूं। यदि कार्य होता है तो इनमें स्वयं ही प्रेरणा पैदा होगी। सत्य स्वयं ही अपने सैनिक चुन लेता है।

वहां सबको मेरा प्रेम कहें।

रजनीश के प्रणाम

27-1-1966

(प्रतिः श्री जयंतीभाई, बंबई)

13 / परिस्थिति नहीं--मनःस्थिति का परिवर्तन करें

परम प्रिय,

प्रेम। आपका पत्र मिले देर हो गई है।

मैं प्रवास में था और कल ही वापस लौटा हूं।
माथेरा-शिविर में जरूर ही आपकी प्रतीक्षा की।
25, 26, 27, दिसंबर को हो रहे चिलखदरा-शिविर में आ जाएं तो वहीं आपकी समस्याओं पर भी बात हो सकेगी और ध्यान के प्रयोग से उनके समाधान का मार्ग भी स्पष्ट हो सकेगा।
ध्यान से चित्त शांत होगा और शांति से शक्ति और आत्मविश्वास उत्पन्न होते हैं।
जैसी परिस्थितियां रही हैं, उनसे अशांत और निराश हो जाना स्वाभाविक
ही है। लेकिन, फिर भी मनःस्थिति बदली जा सकती है।
और उसका परिवर्तन पूरे जीवन को ही बदल देता है।
और जैसा मैंने आपको जाना है, उसके आधार आश्वस्त हूं कि वह परिवर्तन सहज ही हो सकता है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
1-11-1966

(प्रतिः श्री पन्नालाला गंगवाल, श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल), एलोरा, (महाराष्ट)

14 / चाहिए संकल्प--श्रम, धैर्य और प्रतीक्षा

प्रिय वसु जी,
प्रेम।
तुम्हारा पत्र पाकर आनंदित हूं।
मैंने उस प्यास को तुम्हारी आंखों मग अनुभव किया है, जो कि प्रार्थना
बन सकती है और उस खोज की भी पगध्वनि सुनी है जो कि परमात्मा के मंदिर तक ले जाने में समर्थ है। लेकिन संकल्प चाहिए और सतत श्रम धैर्य और प्रतीक्षा।
बीज तो है और उसे वृक्ष बनाया जा सकता है।
परमात्मा शक्ति दे, यही काना है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
2-11-1966

(प्रतिः सुश्री वसुमति शाह, बंबई)

15 / अब तो सबकी व्यथा ही मेरी व्यथा बन गयी है

प्यारी चंदन,
प्रेम। पत्र मिला है।
मेरी व्यथा का अर्थ मेरी व्यथा नहीं है--मेरा ही अब जब कुछ नहीं है तो मेरी व्यथा तो हो ही कैसे सकती है?
आह! अब तो सबकी व्यथा ही मेरी व्यथा बन गयी है।
और अब तू उस व्यथा की तीव्रता और विस्तार को समझ सकती है।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
5-2-1968

(प्रतिः सुश्री चंदन, बंबई)

16 / जीवन एक न सुलझने वाली--सुलझी हुई पहेली

प्यारी शोभना,
प्रेम। क्या तुझे पता नहीं है कि ऐसी मुक्ति भी है जो बंधन है और ऐसे बंधन भी है जो कि मुक्ति है? क्या तूने ऐसे सत्य नहीं देखे जो कि स्वप्न हैं और ऐसे स्वप्न नहीं देखे जो कि सत्य हैं?
जीवन इसलिए ही तो पहेली है।
और पहेली वह नहीं है जो कि सुलझ जाए--पहेली तो वही है जो कि सुलझ ही न सके, क्योंकि वस्तुतः तो वह सुलझी ही हुई है!
जैसे कि सोए हुए को जगाया जा सकता है, लेकिन जो जागा ही हुआ है, उसे कैसे जगाया जा सकता है?
जैसे कि बंद द्वार खोले जा सकते हैं, लेकिन जो द्वार खुले ही हैं वे कैसे खोले जा सकते हैं?
मैं तुझे जरूर ऐसी पहेली दूंगा जो कि इसीलिए पहेली है कि पहेली नहीं है।
प्रेम और क्या है?
प्रभु और क्या है?
मैं तुझे ऐसे बंधन दूंगा जो कि मुक्ति है और ऐसे स्वप्न जो कि सत्य हैं।
प्रेम और क्या है?
प्रभु और क्या है?
और, तू पूछती है कि कविता क्या है?

रजनीश के प्रणाम
6-3-1968

(प्रतिः सुश्री शोभना अब मा योग शोभना, बंबई)

17 / तेरे ही हाथों मग तेरा भाग्य है

प्यारी निर्मल,
प्रेम। मेरा पत्र। पगली! तू व्यर्थ ही कष्ट झेल रही है।
आकाश के तारों में नहीं, तेरे ही हाथों में तेरा भाग्य है।
और तू जब चाहे तब बदलाहट ला सकती है।
अभी तो इतना ही कर कि दो-तीन माह कि लिए कमला के पास आ जा।
स्वास्थ्य पर ध्यान दे।
एक बार तू शांत होकर कोई भी निर्णय लेने की स्थिति में आ सके, यही बस जरूरी है।
फिर तू जो भी निर्णय लेगी, वही शुभ होगा।
मैं जानता हूं कि तू दुख के बाहर होने के करीब है।
लेकिन तुझे ही कुछ करना होगा।
और परमात्मा तो सदा उनके साथ है जो कि स्वयं के साथ हैं।
मैं 4, 5, 6, मई पूना बोल रहा हूं।
यदि संभव हो तो कमला को लेकर वहां आ जा।
संभव है कि मेरा प्रेम कुछ कर सके।
वहां सबको मेरे प्रणाम।
कमला को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
5-4-1968

(प्रतिः सुश्री निर्मल , बंबई)

18 / व्यक्तित्व की सुवास

प्यारी चंदन ,
प्रेम। तेरा पत्र और तेरे सुवासित शब्द
तू सच ही चंदन है और तेरी रोज बहती सुवास में आनंदित हूं।
जल्दी ही तू मिट जावेगी और फिर बस सुवास ही रह जाएगी।
वही प्रभु मिलन है।

रजनीश के प्रणाम
14-4-1968

(प्रतिः सुश्री चंदन , बंबई)

19 / आमूल जीवन -क्रांति को मैं संन्यस्त कहता हूं

प्रिय पुष्पा ,
प्रेम। तेरा पागलपन से भरा हुआ पत्र मिला है।
मैं संन्यास के विरोध में नहीं हूं।
लेकिन , वस्त्र या बाह्य स्थिति -परिवर्तन को नहीं , वरन आमूल जीवन -क्रांति को संन्यास कहता हूं।
वैसे संन्यास को खोज।
वह संन्यास ही प्रभु की खोज बन सकता है।
लेकिन जो वस्त्र बदल लेने को या इसी तरह की और गौण और दो कौड़ी की बातों को ही संन्यास मान लेते हैं , वे ऐसा वास्तविक संन्यास से बचने के लिए ही करते हैं।
इसलिए तो संन्यासियों में संन्यासी का मिलना दुर्लभ हो गया है।
मैं जब अगस्त में आऊं तब मिल।
इस बार तुझसे विशेष रूप से बात कर सकूंगा।
शेष शुभ।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
19-7-1968

(प्रतिः कुमारी पुष्पा पंजाबी , अब मा धर्मज्योति , बंबई)

20 / अनंत और स्वयं के बीच बाधा --मैं की मूर्च्छा

प्यारी शोभना ,
प्रेम।
मैं ही है किनारा --वही है बंधन --वही है बाधा अनंत और स्वयं के बीच। दुख भी वही है और दुख का कारण भी।
और प्रत्येक निर्णय से वह मजबूत होता है।
उसे मिटाने के निर्णय से भी !

वस्तुतः जीवन के समस्त निर्णयों को जोड़ ही तो वह है।
उसे मिटाने--उससे मुक्त होने में यही तो कठिनाई है। संकल्प (रूपसस)से
वह नहीं मिट सकता है।
इसलिए, सिर्फ समझ उसे।
समझ कि वह क्या है?
पूछः मैं कौन हूं?
पूछः मैं क्या हूं?
पूछः मैं कहां हूं?
उत्तर?
उत्तर नहीं है।
मैं है ही नहीं--तो उत्तर कैसा?
किंतु, अनुत्तर मौन ही क्या उत्तर नहीं है?
शून्य है उत्तर।
उस शून्य में बस वही है, जो है।
फिर शोभना नहीं है--तट नहीं है--बस सागर है।
सागर और सागर और सागर।
और क्या तू सुन नहीं रही है कि सागर तुझे बुला रहा है।
आ! आ! आ!

रजनीश के प्रणाम
17-8-1968

(प्रतिः सुश्री शोभना अब मा योग शोभना, बंबई)

21 / शरीर और इंद्रियों से परे--हृदय के स्वर

प्यारी शोभना,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है--अभी-अभी।
पोस्ट स्टांप नहीं थे और किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था, ताकि पोस्ट ऑफिस से उन्हें मंगाया जा सके।
और तू है कि अचानक ही ढेर सारे स्टांप लेकर आ गई है!
देख! इसे ही कहते हैं न चमत्कार!
आह! और तेरा वह पत्र जो कि तूने साथ में नहीं भेजा है!
मैं उसे पढ़ता हूं और वह है कि पूरा होता ही नहीं है।
लिखा हुआ तो चुक जाता है, लेकिन अनलिखा चुके भी तो कैसे?
शब्द जहां नहीं हैं, वहां भी तो हृदय कुछ कहना चाहता है। और शरीर जहां स्पर्श को नहीं है, वहां भी तो हृदय कुछ स्पर्श करना चाहता है।
तू वहीं मुझे स्पर्श कर रही है।
और तू वही मुझसे कह रही है जो कि कहा नहीं जा सकता है।
लेकिन आश्चर्य तो यही है कि जो नहीं लिखा जा सकता वह भी पढ़ा जा सकता है
और जो नहीं कहा जा सकता, वह भी सुना सुना जा सकता है।
क्योंकि, अभिव्यक्ति मनुष्य की सीमित है, लेकिन अनुभूति तो असीम है।

रजनीश के प्रणाम
10-9-1968

(प्रतिः सुश्री शोभना अब मा योग शोभना, बंबई)

22 / मैं--मेरे नहीं--सत्य के मित्र चाहता हूं

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपके कृपा-पत्र को पाकर अनुगृहीत हूं।
मैं किसी व्यक्ति के विरोध में नहीं हूं।
लेकिन, उन सिद्धांतों के जरूर विरोध में हूं, जिनसे राष्ट का अहित हुआ
है और हो रहा है।
ऐसे सिद्धांतों की तीव्र आलोचना आवश्यक है।
क्योंकि उस आलोचना के द्वारा ही देश की मनीषा को चिंतन के लिए विवश किया जा सकता है।
इससे मेरा विरोध होगा। निश्चय ही।
लेकिन, वह हो यह मैं चाहता हूं।
सत्य सदा विजयी होता है।
और जो मैं कह रहा हूं, वह यदि सत्य नहीं है तो उसकी पराजय उचित है।
कौन मित्र मुझे छोड़ देंगे इसकी चिंता न करें।
मैं मेरे नहीं, सत्य के मित्र चाहता हूं।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
13-11-1968

(प्रतिः श्री लहरचंद शाह, बंबई)

23 / प्यास ही प्रार्थना है

प्यारी चंदन,
प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर अत्यधिक आनंदित हूं।
सत्य की ऐसी प्यास सौभाग्य है, क्योंकि जो ऐसी तीव्रता और अत्कटता से प्यासे होते हैं वे ही केवल उसे उपलब्ध कर पाते हैं।
प्राणों की परिपूर्णता प्यास के अतिरिक्त उसे पाने का और कोई भी मार्ग भी तो नहीं है।
इसलिए ही तो मैं कहता हूं प्यास ही प्रार्थना है और प्यास ही उसकी प्राप्ति है।
परमात्मा के सर्वाधिक निकट कौन है।
वे ही जो उसकी प्यास में पागल हो गए हैं। और जिनकी आंखों में उसकी प्यास के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं बचा है।
और मैं जानता हूं कि ऐसी ही घटना तुम्हारे प्राणों में भी घट रही है।
और मैं उसका साक्षी हूं।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
31-11-1968

(प्रतिः सुश्री चंदन, बंबई)

24 / मैं तो मिट ही गया हूं

प्यारी कमला,
प्रेम। तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
मेरी आंखों में जो तुझे दिखायी पड़ा है, वह मैं तो निश्चय ही नहीं हूं।
मैं तो मिट ही गया हूं।
अब तो बस वही है, जो वस्तुतः है।

और उसने ही तुझे आकर्षित किया है।
उसके रास्ते अनूठे हैं।
उसके बुलावे भी अदभुत हैं।
उसकी पुकार सुन। उसे खोज।
मेरी याद को उसकी ही याद बना।
उसकी तुझ पर कृपा हो।
और और कृपा हो यही मेरी कामना है।
परिवार में सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
12-12-1968

(प्रतिः श्रीमती कमला छाबरिया, बंबई)

25 / स्त्रियों में विद्रोही आत्मा के जागरण की आवश्यकता

प्यारी पुष्पा,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
सलु के लिए मैं भी चिंतित हूं।
स्त्रियों की स्थिति साधारणतः अच्छी नहीं है।
पुरुषों का शोषक व्यवहार तो जिम्मेवार है ही।
लेकिन स्त्रियां भी उतनी ही दोषी हैं।
उनमें विद्रोह की चिनगारी जब तक उनमें नहीं है, तब तक उनका व्यक्तित्व, उनकी आत्मा ठीक से प्रकट नहीं हो सकती है।
यह विद्रोह भी प्रेमपूर्ण हो सकता है।
सच तो यह है कि जहां विद्रोही आत्मा नहीं है--स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है, वहां प्रेम की संभावना भी क्या है?
तथाकथित दांपत्य स्थापी वेश्यागिरी हो गया है।
स्त्रियों को वेश्या बनने से इनकार करना है।
सुरक्षा का अति आग्रह यह नहीं होने देता है।
मैं जब आऊंगा, तब बात करूंगा।
स्त्रियों को संगठित कर तो बहुत बातें की जा सकती हैं।
सलु को मेरा प्रेम।
उससे कहनाः पत्र लिखे। किसी भी--टूटी-फूटी भाषा में ही सही।

रजनीश के प्रणाम
23-12-1968

(प्रतिः कुमारी पुष्पा पंजाबी अब मा धर्मज्योति, बंबई)

26 / अनित्य पर ही ध्यान रखना है

प्यारी वसु,
प्रेम। मैं बंगाल, और विदर्भ के प्रवास में था।
पत्र तो तेरा प्रवास में ही मिल गया था।
लेकिन प्रत्युत्तर जल्दी नहीं दे सका।
क्षमा करना।
तू प्रतीक्षा कर रही होगी और उत्तर न पाकर नाराज हो रही होगी।
वैसे कभी-कभी नाराज होना भी अच्छा ही होता है।
उससे भी प्रेम का ही पता चलता है!

मैं 30 जून को पहुंच रहा हूं।
तू मिलेगी ही तो बातें हो सकेंगी।
उदास तू व्यर्थ ही है।
जीवन जैसा है, उसकी आनंदपूर्ण स्वीकृति चाहिए।
यही साधना है।
कुमारिल अब कैसे हैं?
मैं आशा करता हूं कि वे ठीक होंगे।
बीमारी और स्वास्थ्य, रात और दिन, मृत्यु और जन्म, दुख और सुख आते हैं
और जाते हैं।
जो न आता है, न जाता है, उस पर ही ध्यान रखना है। वही है। बस वस्तुतः वही है।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1969

(प्रतिः श्रीमती बसुमती शाह, बंबई)

27 परिचय--विगत जन्मों का

प्यारी दर्शन,
प्रेम। तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
निश्चय ही तेरा परिचय नया ही है।
पुराना है: अति पुराना: विगत जन्मों का
और तेरा स्मरण ठीक है।
ध्यान में उतरेगी तो स्मरण और भी स्पष्ट होगा।
मैं 19 जुलाई को बंबई आ रहा हूं।
तब तू मिल।
शेष मिलने पर।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
15-6-1969

(प्रतिः कुमारी दर्शन, बंबई)

28 / सार्थक संवाद--निःशब्द में ही

प्यारी दर्शन,
प्रेम। तेरा पत्र पाकर कितना आनंदित हूं? कैसे कहूं? उसकी प्रतीक्षा रोज ही करता था।
पर कितना छोटा सा पत्र लिखा है?
फिर भी जो तूने छोड़ दिया है, वह भी मैंने पढ़ लिया है।
पंक्तियों के बीच में भी तो सदा बहुत कुछ छिपा रहता है!
या कि वहीं छिपा रहता है!
शब्द कभी कहते हैं, पर अधिकतर तो छिपाते ही हैं।
शब्द की सीमा है।
और जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सत्य है, सुंदर है, वह सीमा उस सीमा के बाहर है।
प्रेम भी। प्रार्थना भी। परमात्मा भी।

शब्द है मृत और इसलिए जीवन सदा ही निःशब्द है।
लेकिन मृत में भी जीवन का प्रतिपालन हो सकता है।
वह भी जीवन का दर्पण तो बन ही सकता है।
और ऐसा जब भी होता है, तभी काव्य का जन्म हो जाता है।
फिर शब्द निःशब्द के इंगित हो जाते हैं।
शब्द का तू उपयोग कम ही करती है।
अनेक बार तो वे तेरे ओंठों के कंपन मात्र होकर रह जाते हैं।
और बहुत कुछ तो तेरे ओंठों तक भी नहीं आ पाता है।
शायद हृदय की धड़कनों में ही खो जाता है।
और ऐसी तरंगों का भी मैंने अनुभव किया है, जिन्हें कि तेरा हृदय भी नहीं जान पाता है।
वे तेरे अस्तित्व के मूल-स्रोत की ही तरंगें हैं।
एक कवि है तेरे भीतर--और वह जन्म लेने को बहुत आकुल आतुर है।
और कौन जानता है कि शायद उसके लिए मुझे दाई बनना पड़े?
शेष शुभ
वहां सबको प्रणाम।
मैं बंबई आता हूं तब किसी दिन दोपहर आकर मिल जाना।

रजनीश के प्रणाम
21-11-1969

(प्रतिः श्रीमती दर्शन बालिया, बंबई)

29 / स्वीकार भाव

प्यारी धर्मिष्ठा
प्रेम। तेरा पत्र।
जो हो, उसे स्वीकार भाव से देख।
वेदना और दुख को भी स्वीकार कर और देख।
उपस्थिति। (ढतमेमदबम)का मुझे पता है, पर अब वह भी हित में है।
कुंडलिनी जाग रही है, इसलिए जहां तक बन सके कोई दवा मत लेना।
अच्छा हो कि जूनागढ़ आकर मिल जा।
बाबूभाई भी आ सकें तो बहुत अच्छा।
और मैं तो सदा साथ हूं ही।
वहां सबको प्रणाम।
बाबूभाई को प्रेम। न मालूम क्यों--बाबूभाई की याद मुझे बहुत आती है।
लगता है कि मेरे कार्य में ही अंततः उनका पूरा जीवन लगने वाला है।

रजनीश के प्रणाम
2-12-1969

(प्रतिः सुश्री धर्मिष्ठा शाह अब मा आनंद मधु, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

30 / जड़-मूल से सब बदल डालना है

मेरे प्रिय,
मैं यह जान कर अति आनंदित हूं कि आप सिंहनाद का प्रकाशन प्रारंभ कर रहे हैं।
जीवन की प्रत्येक दिशा में सिंहनाद की आवश्यकता है।

जड़-मूल से सब बदल डालना है।
मनुष्य अब तक जिस भांति जीआ है, वह मूलतः गलत था।
इसलिए पुराने मनुष्य को विदा देनी है और नये मनुष्य के जन्म के आधार रखने हैं।
मैं आशा करता हूं कि सिंहनाद इस महत कार्य में पहल करेगा।
मैं और मेरी शुभ कामनाएं सदा आपके साथ हैं।

रजनीश के प्रणाम
10-12-1969

(प्रतिः श्री नटुभाई महेता, सुरेंद्र नगर)

31 / मन--एक असहजता

प्रिय मधु,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
तेरे आनंद से मैं भी आनंदित हूं।
जीवन सहज है।
लेकिन मनुष्य का मन सहज नहीं है।
इसलिए मन और जीवन का मेल कहीं भी नहीं हो पाता है।
जहां मन है वहां जीवन नहीं है।
इसलिए मन की कोई भी चेष्टा जीवन तक नहीं पहुंचती है।
किंतु इस सत्य के दर्शन के साथ ही मन गिर जाता है।
और फिर तो है वही जीवन है।
जहां मन नहीं है वहीं जीवन है।
मन है अनुभव का संग्रह, मन है स्मृति।
अर्थात मन सदा अतीत है और मृत है।
वह उस सबका संग्रह है जहां से कि जीवन निकल चुका है।
मन वह केंचुली है जिसे कि जीवन का सांप प्रतिपल पीछे छोड़ देता है।
और मनुष्य इस केंचुल में ही उलझ रहता है।
यह देख कर कि तू इस केंचुली से मुक्त हो रही है, मैं बहुत आनंदित हूं।
बाबुभाई को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
12-1-1970

(प्रतिः सुश्री मधु धर्मिष्ठा शाह, अब मा आनंद मधु, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

32 / जीवन है अनंत रहस्य

प्यारी मधु,
प्रेम। तेरे पत्र मिल गए हैं।
बिना पत्रों के ही उत्तर देने की कोशिश करता हूं।
उत्तर तुम तक पहुंच भी जाते हैं।
लेकिन, अभी तू समझ नहीं पाती है।
जीवन है अनंत रहस्य।
जैसे अज्ञात सागर में एक अनाम द्वीप है।
और तू उसे द्वीप के रोज निकट आती जा रही है।
मैं इससे बहुत आनंदित हूं।

19

जो भी हो, उसे लिख दिया कर।
बाबुभाई बेहोश ही नहीं थे।
वे गहरे ध्यान में चले गए थे।
इसलिए ही डाक्टर कारण समझ नहीं पाए।
उनकी यात्रा भी तीव्रता से चल रही है।
संभव है कि वे तुझसे पहले ही पहुंच जाएं।
शेष शुभ।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
5-2-1970

(प्रतिः सुश्री मधु शाह, अब आनंद मधु, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

33 / भोग और दमन के बीच में द्वार है: जागरण का

प्रिय धर्मज्योति,
प्रेम। चित्त को कभी भी दबाना मत।
दमन (त्तमचतमेपवद)रोग है।
और जो दबाया जाता है, वह कभी भी मिटता नहीं है।
वह लौट-लौट कर आक्रमण करता है।
चित्त को समझना है।
अंततः चित्त की समझ ही सुलझाव बनती है।
दमन तो मात्र रोगों का स्थगन (ढवेज ढवदउमदज)है।
न भोग में मार्ग है, न दमन में मार्ग है।
मार्ग है ज्ञान (न्नदकमतेजंदकपदह) में।
इसलिए, स्वयं के चित्त को उसके समग्र रूपों में जान।
होश से जी।
जाग्रत जी।
फिर जो व्यर्थ है, वह अपने आप ही विसर्जित हो जाता है।
और उसकी ऊर्जा (द्मदमतहल)सार्थक में रूपांतरित हो जाती है।
अन्यथा हम स्वयं के साथ ही दुष्ट-चक्र (पिंबपवने बपतबसम)पैदा कर लेते हैं।
एक तथाकथित संत एकांत में धूनी रमाए बैठे थे।
एक व्यक्ति उनकी परीक्षा के लिए आया और उसने कहाः बाबा जी, धूनी में कुछ आग है?
संत ने कहाः इसमें आग नहीं है।
उसने कहाः कुरेद कर देखिए, शायद आग हो?
संत ने त्यौरियां चढ़ा कर कहाः मैंने तुमसे कह दिया इसमें आग नहीं।
उस व्यक्ति ने फिर झिंझोड़ाः बाबा जी, कुछ चिनगारियां तो जरूर हैं?
संत अपना चिमटा ठोकते हुए कहाः कैसा मूर्ख है तू?
लेकिन उस व्यक्ति ने फिर भी कहां, बाबा जी, मुझे तो कुछ चिनगारियां दिखाई देती हैं?
संत ने कहाः तो क्या मैं अंधा हूं?
वह व्यक्ति बोलाः अब तो कुछ लपट भी उठती दिखाई पड़ती है?
फिर तो संत ने होश खो दिया।
उनकी आंखें चिनगारियों से भर गईं और उनकी वाणी लपटों से। वे अपना चिमटा लेकर उसे मारने को दौड़ पड़े।
भागते-भागते उस व्यक्ति ने कहाः बाबा जी, देखिए अब तो अग्नि पूरी हो तरह भड़क उठी है।
दबायी गई अग्नि ही भड़क सकती है।
और दबाई हुई अग्नि कभी भी भड़क सकती है

दमन स्वयं से ही दुश्मनी है।
और स्वयं को ही धोखा भी।
भोग और दमन के बीच में द्वार है--शांति का, मुक्ति का, शक्ति का, सत्य का, समाधि का।
उस द्वार को खोज।

रजनीश के प्रणाम
7-9-1970

(प्रतिः मा धर्मज्योति, बंबई)

34 / सत्य को जानने और पचाने की भी पात्रता चाहिए

प्यारी मौनू,
प्रेम। सत्य तो सदा है।
लेकिन खोजने वाले की पात्रता न हो तो सत्य के सदा होने से क्या फर्क पड़ता है।
पात्रता के आते ही सत्य प्रकट हो जाता है।
द्वार के खुलते ही जैसे सूर्य भीतर आ जाता है।
आंखें हैं--सूर्य है; लेकिन द्वार बंद है; इसलिए अंधेरा है। अंधकार हमारा ही निर्माण है।
अज्ञान के लिए हम ही आधार हैं।
सत्य को जानने और पचाने की भी पात्रता चाहिए।
असमय में मिले सत्य को पचाना भी कठिन है।
रूमी ने एक कहानी कही हैः
एक मुरीद बहुत दिनों से पीर के पीछे पड़ा हुआ था कि दुख से छूटने का गुर बता दीजिए।
अंत में एक दिन पीर ने कहाः बहुत ही आसान गुर है। जो आदमी कहे कि मैं सबसे अधिक सुखी हूं, उसका अंगरखा उतरवा कर पहन लो।
फिर क्या था: मुरीद निकल पड़ा सुख की खोज में।
मगर हर सुखी आदमी के मुंह से उसे यही सुनने को मिलता कि मुझसे ज्यादा फलां आदमी सुखी है।
वर्षों इसी तरह भटकने के बाद किसी के कहने से वह एक फकीर के पास पहुंचा, जो मुंह पर अंगोछा डाले एक खजूर-वृक्ष के नीचे बैठा था।
मुरीद के पूछने पर फकीर ने कहाः हां में सबसे ज्यादा सुखी हूं।
निराश मुरीद की आत्मा में आशा के फूल खिले। उसने फकीर के पैर चूमते हुए प्रार्थना की--बाबा, अपना अंगरखा मुझे दे दीजिए।
लेकिन फकीर हंसा और बोला, मगर देखो तो बेटा, मेरे बदन पर अंगरखा है क्या?
और उसने अपने मुंह पर से अंगोछा हटा दिया।
यह तो वही पीर था--सुख का सुर बताने वाला गुरु।
और उसका शरीर उघाड़ा था--अंगरखा था ही नहीं।
जैसे अचानक बिजली कौंध जाए--ऐसा ही मुरीद के भीतर कुछ कौंध गया।
जैसे अकस्मात अंधेरे में दीया जल जाए--ऐसे ही मुरीद के भीतर कोई अनजला दिया जल गया।
वह बोलाः मगर बाबा, यह बात आपने पहले ही क्यों न समझाई?
उत्तर मिला, बेटे, तब तुम्हारी समझ में न आती। बरसों की मेहनत ने तुम्हें सत्य को पचाने योग्य बना दिया है।

रजनीश के प्रणाम
17-9-1970

(प्रतिः सुश्री मौनू क्रांति, जबलपुर म. प्र.)

35 / चुप हो--और जान

प्रिय धर्मज्योति
प्रेम। पल-पल परमात्मा पुकार रहा है।
लेकिन, मन हमारा स्वयं में ही व्यस्त है।
अव्यस्त हुए बिना उसकी आवाज सुनाई नहीं पड़ सकती है।
अव्यस्त-चित्त ही ध्यान है।
शून्य: मौन: निःशब्द होते ही उसके स्वर प्राणों को आपूरित कर देते हैं।
चुप हो: और जान।
एक तार ऑफिस मग वायरलेस क्लर्क की नौकरी के लिए बहुत से उम्मीदवारों
को बुलाया गया था।
ऑफिस के बाहर एक बड़ी पंक्ति में खड़े वे अपने बुलाए जाने की प्रतीक्षा
कर रहे थे।
लेकिन, वह प्रतीक्षा मौन तो नहीं थी।
बातें चल रही थीं और वे सब बाहर या भीतर अपने-अपने विचारों में डूबे थे। और, तभी सब से अंत में खड़ा व्यक्ति पंक्ति से निकल तार-ऑफिस में चला गया। शायद, उसे जाते भी किसी ने नहीं देखा।
उसे तो देखा लोगों ने तब, जब वह नियुक्ति पत्र लेकर बाहर आया और बोलाः जिस नौकरी के लिए यह विज्ञापन दिया गया था, वह मुझे मिल गयी है, इसलिए अब आप व्यर्थ ही खड़े रहने का कष्ट न करें और अपने घरों को जाएं।
यह सुनते ही वहां बड़ी हलचल मच गई।
भाई-भतीजावाद, मुर्दाबाद के नारे लगने लगे।
लोग कहने लगे कि जब इस व्यक्ति को इस भांति पहले से चुन लिया गया था तो हमें बुलाने की ही क्या आवश्यकता थीं?
लेकिन, तार ऑफिस के बड़े अधिकारी ने आकर कहाः आपका अनुमान गलत है। यह व्यक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही नियुक्त हुआ है। हमने लाउड स्पीकर के ऊपर तार-ऑफिस की टिक-टिक की भाषा में पुकारा था कि जो व्यक्ति इस संदेश को समझे वह तत्काल भीतर आ जाए--उसका नियुक्ति-पत्र तैयार है। लेकिन, आप बातों में व्यस्त थे और नहीं सुन सके तो हमारा क्या कसूर है?
आह! क्या एक दिन परमात्मा भी हम सब से यही नहीं कहेगा?
कितनी है उसकी पुकार--लेकिन क्या हमारे शोरगुल में वह टिक-टिक की आवाज
ही नहीं हो गई है?
चुप हो--और जान।

रजनीश के प्रणाम
17-10-1070

(प्रतिः मा धर्मज्योति, बंबई)

36 / असंभव की चुनौती में ही परमात्मा का जन्म है

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। जानता हूं कि नौका तट छोड़ने के पूर्व बहुत बार खूंटियों से बंधे रहने का मोह करती है। यह स्वाभाविक ही है।
जानता हूं कि बीज टूटने के पूर्व बहुत बार अनिश्चय में पड़ जाता है, क्योंकि वह जो है, मिटाना है, और जो नहीं है, उसे पाना है। जो है वह उसे सत्य

प्रतीत होता है, जो होना है, वह स्वप्न। और, सत्य और स्वप्न में चुनना हो तो जो सत्य मालूम होता है उसी ओर मन झुके तो आश्चर्य तो नहीं हैं।
जानता हूं कि सरिता भी सागर में गिरने के पूर्व पीछे मुड़-मुड़ कर देखने लगती है। अतीत खींचता है, भविष्य भय देता है। साधारणतः यही संभव है। लेकिन, मैंने तुमसे असंभव की आशा की है। क्योंकि, असंभव की चुनौती ही आत्मा का जन्म है।

रजनीश के प्रणाम
25-10-1970

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

37 / साधना के पथ पर शत्रु भी मित्र हैं

प्रिय योग प्रेम,
प्रेम। तेरे साहस और तेरे संकल्प से खुश हूं।
ऐसे ही सोना शुद्ध होता है।
इसलिए, जो भी संकल्प और साहस के लिए अवसर दे, उसका अनुग्रह मानना।
साधना के पथ पर शत्रु भी मित्र हैं।
किसी के प्रति दुराग्रह नहीं बनाना।
मार्ग के पत्थरों की सीढ़ियां बना लेना ही जीवन की कला है।
फिर तो कांटे भी फूल हो जाते हैं।
और अमावस भी पूनम बन जाती है।

रजनीश के प्रणाम
25-10-1970

(प्रतिः मा योग प्रेम, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

38 / अज्ञानी होने की तैयारी में वास्तविक ज्ञान का जन्म

मेरे प्रिय,
प्रेम। पत्र पाकर आनंदित हूं।
ध्यान के संबंध में जो आपने नहीं कहा था, वह मुझे ज्ञात है। लेकिन, सोचा था कि आप कहें तभी बात करना उचित होगा। इसलिए चुप रहा।
जो संकोच कहने में बाधा बना, वही संकोच ध्यान करने में भी बाधा बन रहा है।
संकोच छोड़ें--पागल हुए बिना प्रभु से मिलन नहीं होता है।
संकोच के पीछे तथाकथित समझ है--या कि उसे नासमझी कहें?
बौद्धिक समझ (न्नदजमससमबजनंस न्नदकमतेजंदकपदह)समझ ही नहीं।
समझ छोड़ें और नासमझी में उतरे।
अज्ञान का भी अपना राज (एमबतमज)है।
अज्ञानी होने की तैयारी ही वास्तविक ज्ञान का प्रारंभ बन जाती है।
फिर, परिणाम (त्तमेनसज)की राह न देखें।
वह तो आएगा ही।
लेकिन, उसका विचार करने से उसके आने में बाधा ही पड़ती है।
करें--और शेष प्रभु पर छोड़ दें।
बीज तैयार है--बस मिटें और उसे अंकुरित होने दें।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।
तलवलकर जी को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
26-10-1970

(प्रतिः श्री काशीनारायण सोमण, सह-संपादक, केसरी, नारायण पेठ, पूना)

39 / बाल-बुद्धि से ऊपर उठना ही होगा

मेरे प्रिय,
प्रेम। श्मशानी पीढ़ी के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।
सत्य की अभिव्यक्ति ही साहित्य है।
और, वही प्रौढ़ता भी है।
बाल-साहित्य से ऊपर उठना ही होगा।
दुर्भाग्य से हमारा अधिक साहित्य बाल-साहित्य ही है।
इससे बाल-बुद्धि को पीड़ा भी होगी।
लेकिन वह अपरिहार्य है।
मनुष्य को कब तक बच्चों के घुन-घुनो से खेलने दिया जा सकता है?

रजनीश के प्रणाम
11-11-1970

(प्रतिः श्री निर्भय मल्लिक, संपादक, श्मशानी पीढ़ी, 3 प्रताप घोष लेन, कलकत्ता-7)

40 / स्वयं का बचाव नहीं: बदलाहट करनी है

प्रिय धर्मज्योति,
प्रेम। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपवाद (द्मगबमचजपवद)मानता है।
और यही मान्यता जीवन के रूपांतरण में सबसे बड़ी बाधा बन जाती है।
साधक का पहला कदम इस भ्रांति को ही तोड़ना है।
दोष दूसरों पर थोप कर हम सिर्फ स्वयं को दोषों की ही रक्षा कर लेते हैं।
एक समाचार-पत्र के संवाददाता ने किसी संस्था की आलोचना करते हुए लिखा
कि उसमें सब स्वार्थी और निकम्मे व्यक्ति भरे पड़े हैं।
लेकिन, अगले दिन समाचार पत्र के मालिक ने उस संवाददाता को बुला कर बहुत डांटा और कहाः तुमने लिखने से पहले यह नहीं सोचा कि समाचार पत्र में ऐसा पढ़ कर उस संस्था के सभी कार्यकर्ता हमें परेशान करना शुरू कर देंगे? संवाददाता ने कहाः तो क्या मुझे उसे संस्था के संबंध में सत्य नहीं लिखना चाहिए था?
यह सुन मालिक हंस ने लगा और बोलाः नहीं-नहीं। सत्य जरूर लिखो। आलोचना
भी करो। लेकिन, उसका भी एक वैज्ञानिक ढंग है। आप यह लिखते कि उस संस्था में एक व्यक्ति को छोड़ कर शेष सभी स्वार्थी और निकम्मे हैं तो ऐसा लिखने पर किसी को भी शिकायत न होती। क्योंकि, इस भांति प्रत्येक को स्वयं के बचाव की सुविधा मिल जाती है।
स्वयं का बचाव नहीं करना है।
स्वयं की बदलाहट करनी है।
इसलिए, दोषों की खोज सदा स्वयं में ही करनी हितकर है।

रजनीश के प्रणाम
11-11-1970

(प्रतिः मा धर्मज्योति, बंबई)

41 / स्वयं को स्वीकारें

प्रिय मथुरा बाबू,
प्रेम। मन से लड़ें न।
क्योंकि, लड़ने से मन ही बढ़ता है।
वह विधि भी उसके विस्तार की ही है।
और फिर मन से लड़ने से जीत तो कभी होती ही नहीं है।
वह भी पराजय का ही सुगम सूत्र है।
जो स्वयं से लड़ा, वह हारा।
क्योंकि, जैसे जीते असंभव है।
स्वयं से लड़ना स्वयं को स्व-विरोधी खंडों में विभाजित करना है।
और दोनों ओर से स्वयं को ही लड़ना पड़ता है।
ऐसे जीवन-ऊर्जा रुग्ण ही होती है।
और सीजोफ्रेनिक भी।
नहीं--लड़ें नहीं, वरन स्वयं को स्वीकारे। स्वयं के साथ रहने को राजी हों।
जो है-- है।
उससे भागें नहीं।
उसे बदलने का प्रयास भी न करें।
उसमें जिए।
और तब जीवन-ऊर्जा अपनी अखंडता में प्रकट होती है--स्वस्थ, समाहित और सशक्त।
और फिर रूपांतरण घटित होता है।
स्वस्थ, अखंड और सशक्त जीवन-ऊर्जा की छाया की भांति।
वह प्रयास नहीं, परिणाम है।
वह कर्म नहीं, घटना है।
वह प्रभु-प्रसाद है।

रजनीश के प्रणाम
12-11-1970

(प्रतिः श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, पटना, बिहार)

42 / चलो तो मार्ग बनता है।

प्रिय दिनेश,
प्रेम। युक्रांद के लिए मेरी शुभकामनाएं।
कार्य में लगो, फिर तो मार्ग क्रमशः स्वयं ही साफ होता चलता है।
जीवन में बंधे-बंधाए और तैयार मार्ग नहीं होते हैं। यहां तो चलना ही मार्ग बनता है।
चलो तो मार्ग बनता है।
बैठो तो मार्ग खो जाता है।
जीवन है आकाश जैसा।
पक्षी उड़ते हैं तो भी उनके पद-चिह्न पीछे नहीं छूटते हैं। इसलिए, जीवन में अनुगमन और अनुकरण का उपाय नहीं है।
और जो वैसे उपाय खोजते हैं, वे जीते नहीं, बस केवल मरते हैं।
सुशीला को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
14-11-1970

(प्रतिः श्री दिनेश शाही, युवक क्रांति दल, 16, बी 32 10, भिलाई नगर 1,
म. प्र.)

43 / ईश्वर की पुकार से भर गए प्राणों में: संन्यास का अवतरण

प्रिय धर्मज्योति,
प्रेम। संन्यास उस चित्त में ही अवतरित है, जिसके लिए कि ईश्वर ही सब-कुछ है।
जहां ईश्वर सब कुछ है, वहां संसार अपने आप ही कुछ नहीं हो जाता है।
किसी फकीर के पास एक कंबल था।
उसे किसीने चुरा लिया।
फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी की रिपोर्ट लिखवाई।
उसने लिखवाया कि उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पाजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत सी चीजें चोरी चली गई हैं।
चोर भी उत्सुकतावश पीछे-पीछे थाने चला गया था।
सूची की इतनी लंबी-चौड़ी रूप-रेखा देख कर वह मारे क्रोध के प्रकट हो गया। और थानेदार के सामने कंबल फेंक कर बोलाः बस यही एक सड़ा-गला कंबल था-- इसके बदले इसने संसार भर की चीजें लिखा डाली हैं!
फकीर ने कंबल उठा कर कहाः आह! बस यही तो मेरा संसार है!
फकीर कंबल उठा कर चलने को उत्सुक हुआ तो थानेदार ने उसे रोका और कहा
कि रिपोर्ट में झूठी चीजें क्यों लिखाई?
वह फकीर बोलाः नहीं, झूठ एक शब्द भी नहीं लिखाया है। देखिए! यही कंबल मेरे लिए सब कुछ है--यही मेरा तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पाजामा, यही कोट।
बेशक उसकी बात ठीक ही थी।
जिस दिन ईश्वर भी ऐसे ही सब कुछ हो जाता है--तकिया, गद्दा, छाता, पाजामा, कोट--उसी दिन संन्यास का अलौकिक फूल जीवन में खिलता है।

रजनीश के प्रणाम
19-11-1970

(प्रतिः मा धर्मज्योति, बंबई)

44 / स्वयं को खोने की तैयारी

प्यारी तारा,
प्रेम। देना ही है तो बस स्वयं के अतिरिक्त मनुष्य के पास देने को और कुछ भी नहीं है। शेष सब--दान नहीं--भेंट नहीं--देने का धोखा है। और देने के धोखे में पड़ने से न देने के सत्य में जीना ही अच्छा है।
क्योंकि सत्य में सदा ही श्रेष्ठतर सत्य के लिए द्वार है--मार्ग है-- प्यास है--पुकार है।
प्रभु-मंदिर में तो बस उनकी ही प्रवेश है जो कि स्वयं को खोने को तैयार है। और वह भी बेशर्त।
इस बेशर्त समर्पण (न्नदबवदकपजपवदंस एनततमदकमत) के लिए तू रोज-रोज तैयार हो रही है। यह जान कर मैं अति-आनंदित हूं।

रजनीश के प्रणाम
13-12-1970

(प्रतिः सुश्री तारा, बंबई)

45 / विचारों से गुजर कर विचार का अतिक्रमण

प्यारी सावित्री
प्रेम। विचार सीढ़ी भी है और बाधा भी।
पहले सीढ़ी है और पीछे बाधा है।
कुछ हैं कि उस पर चढ़ते ही नहीं।
और, कुछ हैं कि चढ़ जाते हैं तो उतरते ही नहीं।
दोनों ही भूल में हैं।
चढ़ना भी है और उतरना भी है।
सीढ़ियों के--समस्त सीढ़ियों के उपयोग का यही सार-सूत्र है।
विचार का भय घातक है।
क्योंकि, तब चित्त विचारहीन ही रह जाता है।
जो कि मनुष्य होना नहीं है।
वह मनुष्य-पूर्व अवस्था है।
कहें कि पशुता है।
फिर विचार के मोह में भी नहीं पड़ना है।
वह भी घातक है।
क्योंकि, तब चित्त विचारों के अंतहीन भंवर में ही भटकता रह जाता है।
वह प्रभु-पूर्व अवस्था है।
या कि मनुष्य की अवस्था है।
और जो मनुष्य ही बने रहने की जिद्द करता है, वह विक्षिप्त हुए बिना नहीं रहेगा।
क्योंकि, मनुष्य मंजिल नहीं, बस सेतु है।
उस पर रहना नहीं: उस पर से गुजरना है।
इसलिए कहता हूं--देर न करो, गुजरो।
सेतु पर रुको नहीं--आगे बढ़ो।
विचार पर ठहरो नहीं--निर्विचार में कूदो।
अवसर द्वार पर आ खड़ा हुआ है--पहचानो और कूदो।
क्योंकि, कभी-कभी ऐसे अवसर के आने में जन्म-जन्म लग जाते हैं।
और मैं नहीं चाहता हूं कि तेरे लिए ऐसा हो।

रजनीश के प्रणाम

13-12-1970
(प्रतिः डाक्टर सावित्री पटेल, बलसार, गुजरात)

46 / संकल्प की पूर्णता में या संकल्प की शून्यता में--समर्पण घटित

मेरे प्रिय,
प्रेम। संकल्प पूर्ण हो तो समर्पण बन जाता है।
उसकी पूर्णता ही फिर पूर्ण में डूबा देती है।
संकल्प शून्य हो तो भी समर्पण बन जाता है।
उसकी शून्यता ही फिर पूर्ण का अवतरण बन जाती है।
लेकिन, पूर्ण या शून्य संकल्प के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

दो ही मार्ग हैं।
या, कि एक ही मार्ग हैं जो कि दो जैसा भासता है।
चुनाव व्यक्ति के स्वधर्म पर निर्भर है।
पुरुष-चित्त संकल्प की पूर्णता को चुनता है।
स्त्री-चित्त संकल्प की शून्यता को।
लेकिन, सभी पुरुषों के पास पुरुष-चित्त नहीं है; और न ही सभी स्त्रियों के पास स्त्री-चित्त ही है।
इसी से है जटिलता।
और, यात्रा पर निकलने के पूर्व इसलिए स्वयं के चित्त की ठीक पहचान अत्यंत आवश्यक है।
चित्त बहिर्मुखी है या अंतर्मुखी?
चित्त सक्रिय है या निष्क्रिय?
चित्त बौद्धिक है या भावुक?
सत्य की खोज पर निकलने का मन है या कि सत्य के लिए द्वार खोल कर बाट जोहने की आकांक्षा है?
स्वयं को समझो।
फिर उससे संकल्प या समर्पण की साधना का जन्म होता है।

रजनीश के प्रणाम
13-12-1970

(प्रतिः श्री पी. डी. इंगले, संगमनेर, महाराष्ट)

47 / ध्यान है अमृत--ध्यान है जीवन

मेरे प्रिय,
प्रेम। विवेक ही अंततः श्रद्धा के द्वार को खोलता है।
विवेकहीन श्रद्धा श्रद्धा नहीं, मात्र आत्म-प्रवंचना है।
ध्यान से विवेक जगेगा; वैसे ही जैसे सूर्य के आगमन से भोर में जगत जाग उठता है।
ध्यान पर श्रम करें।
क्योंकि, अंततः शेष सब श्रम समय के मरुस्थल में कहां खो जाता है, पता
ही नहीं पड़ता है।
हाथ में बचती है केवल ध्यान की संपदा।
और मृत्यु भी उसे नहीं छीन पाती है।
क्योंकि मृत्यु का बश काल (ैंपउम) के बाहर नहीं है।
इसलिए तो मृत्यु को काल कहते हैं।
ध्यान ले जाता है कालातीत में।
समय और स्थान (एचंबम) के बाहर।
अर्थात अमृत में।
काल (ैंपउम) है विष।
क्योंकि, काल है जन्म; काल है मृत्यु ध्यान है अमृत।
क्योंकि, ध्यान है जीवन।
ध्यान पर श्रम जीवन पर ही श्रम है।
ध्यान की खोज जीवन की ही खोज है।

रजनीश के प्रणाम
9-1-1971

(प्रतिः डाक्टर एल. आर. पंडित, ड. ढ. एम., क्मदजंस एनतमद, बंबई बाजार, खंडवा, म. प्र.)

48 / संन्यास की आत्मा: स्वतंत्रता में

प्रिय योग माया,
प्रेम। स्वतंत्रता से बहुमूल्य इस पृथ्वी पर कुछ और नहीं है।
उसकी गहराई में ही संन्यास है।
उसकी ऊंचाई में ही मोक्ष है।
लेकिन, सच्चे सिक्कों के साथ खोटे सिक्के भी तो चलते ही हैं।
शायद, साथ कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि खोटे सिक्के सच्चे सिक्कों के कारण ही चलते हैं।
उनके चलन का मूलाधार भी सच्चे सिक्के ही जो होते हैं।
असत्य को चलने के लिए सत्य होने का पाखंड रचना पड़ता है।
और बेईमानी को ईमानदारी के वस्त्र ओढ़ने पड़ते हैं।
परतंत्रताएं स्वतंत्रता के नारों से जीती हैं।
और, कारागृह मोक्ष के चित्रों से स्वयं की सजावट कर लेते हैं!
फिर भी सदा-सदैव के लिए धोखा असंभव है।
और आदमी तो आदमी, पशु भी धोखे को पहचान लेते हैं!
मैंने सुना है कि लंदन में एक अंतर्राट्रीय कुत्ता-प्रदर्शनी हुई। उसमें आए रूसी कुत्ते ने अंग्रेजी कुत्ते से पूछाः यहां के हाल-चाल हैं साथी?
उत्तर मिलाः खास अच्छे नहीं। खाने-पीने की तंगी है। और नगर पर सदा ही धुंध छाई रहती है; जो मेरा गठिए का दर्द बढ़ा देती है। हां, मास्को में हाल कैसी है?
रूसी कुत्ते ने कहाः भोजन खूब मिलता है। चाहे जितना मांस और चाहो जितनी हड्डियां। खाने की तो वहां बिल्कुल ही तंगी नहीं है।
लेकिन फिर वह अगल-बगल झांक कर जरा नीची आवाज में कहने लगा मैं यही राजनैतिक आश्रय चाहता हूं। क्या तुम दया करके मेरी कुछ मदद कर सकोगे? अंग्रेज कुत्ता स्वभावतः चकित होकर पूछने लगाः मगर तुम यहां क्यों रहना चाहते हो; तब कि तुम ही कहते हो कि मास्को में हालत बड़ी अच्छी है? उत्तर मिलाः बात यह है कि मैं कभी-कभी जरा भौंक भी लेना चाहता हूं। कुत्ता हूं और वह भी रूसी, तो क्या हुआ, मेरी आत्मा भी स्वतंत्रता तो चाहती है।

रजनीश के प्रणाम
9-1-1971

(प्रतिः मा योग माया, संस्कार-तीर्थ, आजोल)

49 / विवादों का सर्वश्रेष्ठ: प्रत्युत्तर: मौन

प्रिय योग यशा,
प्रेम। राह चलते लोग सवाल उठाएंगे।
परिचित-अपरिचित विवाद छेड़ेंगे।
यह स्वाभाविक ही है।
जगत के राजपथों को छोड़ कर जब भी कोई निजी पगडंडियों पर यात्रा करने को निकलता है, तब ऐसा होता ही है।
समाज सहज ही स्वतंत्र-चेता व्यक्तियों को समाज-बाह्य (ठनज-एपकमते)मान लेता है।
इतना ही नहीं, समाज की अवरुद्ध चेतना उन्हें समाज-समाधि मानने की वृत्ति भी रखती है।

इसे स्वाभाविक मान कर अविचलित अपने मार्ग पर जो अडिग चलता रहता है, समाज को अंततः उसके संबंध में अपनी दृष्टि बदल लेनी पड़ती है।
और ध्यान रखना कि समाज की स्मृति अति दुर्बल है।
और जहां तक बने व्यर्थ के विवाद से बचना।
अंततः जीवन का ही परिणाम होता है, तर्क का नहीं।
और कभी-कभी मौन से श्रेष्ठ प्रत्युत्तर नहीं होता है।
उत्तर न देना भी तो उत्तर ही है।
मैं एक यात्रा में था।
मेरे पड़ोस में एक अति बातूनी सज्जन थे।
वे बातें करने को उबले जा रहे थे।
उनकी बेचैनी प्रकट थी।
अंततः कुछ और न सूझा तो उन्होंने चुनौती के स्वर में मेरी ओर देख कर कहाः मैं तो मानता नहीं कि स्वर्ग जैसी कोई चीज है?
लेकिन मैंने सुना-अनसुना किया, हंसा और चुप रहा।
वे थोड़ी देर आह हो चुप रहे और पुनः बोलेः मुझे तो स्वर्ग जाने की जरा
भी इच्छा नहीं है।
मैं फिर भी हंसा और चुप रहा।
पर वे सज्जन न माने सो न माने।
और फिर मानते भी कैसे?
मेरी चुप्पी ने शायद उन्हें और उकसाया।
फिर बोलेः मर कर तो क्या, मुझे यदि कोई अभी स्वर्ग जाने को कहे तो भी मैं मना कर दूं।
मैंने उनसे कहाः तो आप नरक जा सकते हैं। लेकिन, यह हवाई जहाज न स्वर्ग
जा रहा है, न नरक। आप सही हवाई जहाज में जाकर बैठें।
फिर मैं हंसता रहा और वे चुप रहे।
फिर कभी-कभी वे मेरी ओर देखते और झेंप जाते।
अंततः यात्रांत पर बोले, मैं आपके हंसने और चुप रहने का रहस्य समझना चाहता हूं। मैं आपकी मौन प्रसन्नता से बहुत प्रभावित हुआ हूं।
मैंने कहाः लेकिन वह तत्काल ही स्वर्ग में प्रवेश का द्वार है। और आप
तो वहां जाना नहीं चाहते हैं न? उनकी आंखें गीली हो गई।
चुप रहे और बोलेः जाना चाहता हूं। मौन नहीं जाना चाहता है?

रजनीश के प्रणाम
10-1-1971

(प्रतिः मा योग यशा, संस्कार-तीर्थ, आजोल)

50 / जीवन: एक खेल, एक अभिनय

प्यारी जयमाला,
प्रेम! जीवन को बहुत गंभीरता से लिया कि उलझी।
जीवन को समझ एक खेल।
जीवन मग देख अभिनय।
सत्य भी वही है।
सुंदर भी।
सुंदर भी।
शुभ भी।
अभिनय में देख अभिनय।
होता ही है।
करते हुए भी साक्षी होना केवल अभिनय में ही संभव है।
और घुटन और व्यर्थ की गलफांस के बाहर वही मार्ग है।

जीवन-आकाश सदा ही खुला है--पर हम स्वयं अपने ही हाथों अपने-अपने पागलपनों में बंद हैं।
जीवन-सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता है--पर हमारी आंखें अपने ही हाथों पैदा किए ध्रुवों में बंधी हैं।

रजनीश के प्रणाम
11-1-1971

(प्रतिः सुश्री जयमाला एन. दिद्दी, 21, 3 बंडरोड, पूना-1)

51 / आत्मीय निकटता का रहस्य-सूत्र

प्रिय, भगवती,
प्रेम! तुम्हें अनेक प्रकार के कष्टों में डालता हूं, ताकि तुम्हें निखार सकूं।
क्योंकि, जब कि सुख व्यर्थ की धूलि से ढांक जाते हैं, तब पीड़ा निखारती है।
तुम्हें सब भांति नया करना है।
कठिन है वह कार्य; क्योंकि नये जन्म की प्रसव-पीड़ा अनिवार्य है।
कभी तुम्हें दूर भी रख सकता हूं--जान कर ही।
ताकि निकट ला सकूं।
क्योंकि, शरीर की निकटता में अक्सर आत्मीय निकटता विस्मृत हो जाती है।
और शरीर की दूरी का बोध प्राणों को निकट ले आता है।
जीवन अत्यंत अदभुत और स्व-विरोधी नियमों का ताना-बाना है।
ऑस्कार वाइल्ड ने कहा हैः जीवन में दो दुख हैं--एक कि जिसे चाहा है वह
न मिले और दूसरा कि वह मिल जाए।
और मैं कहता हूं कि दूसरा दुख निश्चय ही पहले से गहन और गंभीर है।
सच तो यह है कि दूसरे के समक्ष पहले को दुःख कहना ही शायद ठीक नहीं है।
पूछा जा सकता हैः फिर सुख कहां है?
ऑस्कर वाइल्ड द्वारा गिनाए गए दोनों दुखों के मध्य में।
यद्यपि मन मध्य को कभी भी चुनना नहीं चाहता हूं।
पर मैं तुम्हें निरंतर इसी को चुनने की शिक्षा दे रहा हूं।
जानना है सुख तो चुनो मध्य।
क्योंकि, मध्य ही स्वर्ण-पथ है।
लेकिन मध्य का अर्थ क्या है।?
मध्य का अर्थ है कि जिस चाहो, वह न भी मिले और मिला हुआ हो; या फिर मिले
भी तो भी मिला बना रहे।

रजनीश के प्रणाम
11-11-1971

(प्रतिः मा योग भगवती, बंबई)

52 / एक ही सत्य के अनंत हैं प्रतिफलन

मेरे प्रिय,
प्रेम! सत्य तो नया है--न कि पुराना।
इसलिए न तो नये होने से कोई किताब वैज्ञानिक हो जाती है, न ही पुराने होने से। और एक शास्त्र के अंतर्गत सार जगत को लाने की बात भी व्यर्थ है।

वैसा विचार ही उस उपद्रव और वैमनस्य का कारण है जिसे कि आप मिटाना चाहते हैं।
मनुष्यों की रुचियां भिन्न हैं।
मनुष्यों की दृष्टियां भिन्न हैं।
इसलिए, एक सत्य भी अनेक भासता है और एक धर्म भी अनेक रूप लेता है।
यही स्वाभाविक है। यही शुभ है।
और जो इस वैविध्य को बरदाश्त नहीं कर पाता है; वह मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार है।
सूर्य तो निश्चय ही एक है--लेकिन उसके प्रतिफलन अनंत हैं।
सागरों में, सरोवरों में, सरिताओं में।
काल के सरोवर में--क्षेत्र के सागरों में--व्यक्तियों की सरिताओं में सत्य भी अनेक प्रतिबिंब बनाता है।
वे सभी प्रतिबिंब शिव हैं। वे सभी पवित्र हैं।
क्योंकि वे सभी एक प्रभु से ही आते हैं और उसी एक प्रभु की ओर इंगित करते और जो चलने को राजी हैं, उसे उस एक प्रभु में ही ले जाते हैं।
वेद, कुरान, बाइबिल, अवेस्ता--सभी प्रतिबिंब हैं।
कृष्ण, क्राइस्ट, महावीर, मोहम्मद--सभी इशारे हैं।
कुरान या बाइबिल के प्रति आपकी घृणा और वेद के प्रति आपका राम सत्य के पथिक के सूचक नहीं हैं।
काश! आप वेद को भी समझते; लेकिन नहीं समझते हैं--क्योंकि समझते तो कुरान या बाइबिल के प्रति भी दुर्भाव न रह जाता।
सूर्य को किसी भी प्रतिफल से क्यों न देखा हो, फिर तो सभी प्रतिफलन समझ में आ जाते हैं।
सागर की एक बूंद भी जिसने चखी, उसे समस्त सागर के स्वाद का पता चल जाता है।

रजनीश के प्रणाम
11-1-1971

(प्रतिः श्री अर्जनलाल नरेला, 1427, नया बाजार, नीमच कैंट, नीमच, म. प्र.)

53 / मैं-मेरे के भ्रम का बोध

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। मेरे का भाव ही दुख का कारण है।
मेरे का भाव ही संसार है।
मेरे के अतिरिक्त आत्मा पर और काई जंजीरें नहीं हैं।
मेरे के स्वप्न से जागते ही दुख से भी जागना हो जाता है।
मैं किसी के घर मेहमान था।
घने जंगल में बसे एक छोटे से गांव में।
संध्या किसी बातचीत के सिलसिले में मेरे आतिथेय-मित्र की बहन ने बड़े गर्व से मुझसे कहाः वह घर मेरे पिता की बदौलत है--यह फर्नीचर, कपड़े, ये गहने, ये बर्तन यह कार--सब उनके ही दिए हुए हैं। आपके मित्र का यहां सिवाय कविताओं के और कुछ भी नहीं है।
मैंने सुना और मैं हंसा।
मेरे मित्र पहले उदास हुए और फिर मेरी हंसी में सम्मिलित हो गए।
रात्रि में ऐसा लगा कि घर में चोर घुसे हैं।
पत्नी ने पति को जगाया।
लेकिन पति बोलेः मेरा इस घर में है ही क्या? और फिर करवट बदल कर सो गए।
मैं भी जाग गया था।

मुझे फिर हंसी आ गई और मैंने कहाः लेकिन तुम्हारी कविताओं के संग्रह
भी तो पीछे के कक्ष में ही रखे हैं।
मित्र हड़बड़ा कर उठे और बोलेः अरे! हां!
मैं फिर हंसा।
प्रकाश जलाया गया। चोर नहीं थे। सिर्फ भ्रम ही हुआ था।
लेकिन क्या ऐसे ही मैं--मेरे का भाव भी भ्रम ही नहीं है?
इसलिए कहता हूंः प्रकाश जलाओ और देखो।

रजनीश के प्रणाम
11-1-1972

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात)

54 / मैं है जहां, वहां विनम्रता कहां?

प्रिय योग वीणा,
प्रेम! ज्ञान सदा निराग्रही है।
ज्ञान सदा विनम्र है।
क्योंकि, व्यक्ति जितना ही जानता है, उतना ही पाता है कि कितना कम जानता है।
अज्ञान आग्रह है।
अज्ञान अहंकार है।
क्योंकि, व्यक्ति जितना कम जानता है उतना ही पाता है कि कितना जानता है! स्वभावतः क्योंकि ऊंट को पर्वत के निकट आए बिना ज्ञात भी कैसे हो कि वह पर्वत नहीं है!
लेकिन विनम्रता भी झूठी हो सकती है।
और विनम्रता भी मात्र बौद्धिक हो सकती है। और मात्र बौद्धिक विनम्रता विनम्रता नहीं है।
एक बुद्धिमान मित्र ने एक दिन मुझसे आकर कहा, मेरा विचार है कि बुद्धिमान अविश्वासी होते हैं और मूर्ख लोग पूर्णतया विश्वासी।
मैंने उनसे पूछाः क्या आपको अपने कथन पर पूरा विश्वास है?
वे बोलेः पूर्णतया।
ऐसी ही स्थिति उनकी होती है, जो कहते हैं मैं विनम्र हूं।
मैं है जहां वहां विनम्रता कहां?
विनम्रता का बोध भी है जहां, वहां विनम्रता कहां?

रजनीश के प्रणाम
11-1-1971

(प्रतिः मा योग वीणा, विश्वनीड, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात)

55 / जीवन एक बेबूझ पहेली

मेरे प्रिय
प्रेम। आपका पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
न मिलने से इतने विक्षुब्ध हो सकते हैं--इससे मैं विमुग्ध हूं।
प्रेम ही आहत होकर क्रोध बन जाता है।
वह प्रेम क्रोध बन सके वह मृत ही है।

जब सोचता हूं कि जो प्रेम मिलने पर भी प्रकट न होता, वह न मिलने से प्रकट हो पाया है।
जीवन बड़ा बेबूझ है।
मेरे न मिलने के तुम्हारे द्वारा खुले कोई भी कारण सही नहीं हैं-- तुम्हारी बंबई में उपस्थिति की मुझे पूरी खबर थी--तुम मिलने आना चाहते हो यह भी मुझे ज्ञात था--समय की भी मेरे पास कोई भी न थी--और मैं तुमसे मिलना भी चाहता था--इतना ही नहीं, तुम्हारे आने की प्रतीक्षा भी कर रहा था; लेकिन फिर भी मिला नहीं।
क्यों?
क्योंकि जब भी चाहा कि तुम्हें बुलाऊं तभी भीतर इनकार उठा--और जब भी ऐसा होता है, तब मैं भीतर की आवाज पर ही बिल्कुल अतर्क्य स्वयं को छोड़ देता हूं।
इसलिए कारण बताऊं?
और क्षमा भी क्या मांगूं?

रजनीश के प्रणाम
12-1-1972

(प्रतिः श्री व्हाय. एस. धर्माधिकारी, एडवोकेट, राइट टाउन, सबलपुरा, म. प्र.)

56 / भागो मत--रुको और जागो

प्रिय योग मूर्ति,
प्रेम। बंधन या मुक्ति वस्तु में नहीं, दृष्टि में होती है।
और इसलिए खुले आकाश के नीचे खड़ा व्यक्ति भी बंधन में हो सकता है; और जंजीरों में बंधा, कारागृह के अंध-कक्ष में पड़ा, व्यक्ति भी मुक्त हो सकता है।
इसलिए तो कहता हूंः स्वयं को कहीं से मुक्त करने के बजाय--स्वयं से मुक्त होने को साधो।
मुक्ति की यात्रा बाह्य नहीं, आत्यंतिक रूप से आंतरिक है।
इसलिए जो नहीं जानते उन्हें संन्यास भी बंधन है; और जो जानते हैं उन्हें संसार भी मोक्ष है।
भागने वाले नहीं--जानने वाले बनो।
और भागोगे कहां?
जो मन यहां जंजीरें ढाल लेता है, वह मन वहां भी जंजीरें ढाल लेगा।
और मन से तो भागोगे ही कैसे?
वह तो तुम ही हो--जो भाग रहा है वही तो मन है।
इसलिए भागो ही मत।
शक्ति को व्यर्थ ही भागने में मत गंवाओ।
जहां हो वहीं रुको और जागो।

रजनीश के प्रणाम
12-1-1971
(प्रतिः स्वामी योगमूर्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल गुजरात)

57 / जीवन-रहस्य

प्यारी गुणा,

प्रेम। एक दिन झेन फकीर होशिन ने अपने शिष्यों को एक कहानी सुनाईः तोफुकु (ैंवनिन)बूढ़ा हो गया था। उसने एक दिन अपने शिष्यों से कहाः मैं एक वर्ष से ज्यादा तुम्हारे बीच नहीं रहूंगा। इसलिए, नासमझो, अब तुम सब मेरी बातें ठीक से ध्यान में रख लेना। लेकिन, शिष्यों ने सोचा कि वह मजाक कर रहा है। एक वर्ष बीत गया तो तोफुकु ने कहाः अब आखिरी क्षण निकट है। आज रात्रि जब बर्फ गिरनी बंद हो जाएगी, तो मैं तुमसे बिदा ले लूंगा। लेकिन, इस पर शिष्य बहुत हंसे, क्योंकि आकाश पूरी तरह साफ था और बर्फ का कहीं पता ही नहीं था। उन्होंने सोचा कि मालूम होता है कि बूढ़े तोफुकु का दिमाग अब ठीक से काम नहीं करता है। लेकिन, अर्ध-रात्रि के पूर्व ही बर्फ पड़ने लगी! पर शिष्यों ने सोचा कि यह मात्र संयोग की बात है! और सुबह से पूर्व ही बर्फ बंद भी हो गई, लेकिन तब तक शिष्य तोफुकु की बात को रात के स्वप्नों में दबा चुके थे। सूर्य निकला और रात्रि पड़ी बर्फ पर धूप चमकने लगी। लेकिन बूढ़े तोफुकु को उसके कक्ष से न निकलते देख शिष्य कक्ष के भीतर गए। लेकिन वहां तो सिर्फ शरीर पड़ा था और तोफुकु जा चुका था।
होशिन (भवेपद)के शिष्यों को इस कहानी पर भरोसा नहीं आया!
किसी एक ने मजाक में होशिन से पूछाः क्या आप भी ऐसी भविष्यवाणी कर सकते हैं?
होशिन ने कहाः मेरे लिए तो वर्ष भर भी कहां बचा है! बस, सात दिन ही शेष हैं--इसलिए नासमझो, जो मैं तुमसे कहूं उसे ठीक से ध्यान में रख लेना। लेकिन, कौन उसका भरोसा करता? शिष्य हंसे और बात आई-गई हो गई!
और सात दिन बाद जब होशिन ने उन्हें अपने कक्ष में बुलाया तो उन्हें सात दिन पहले हुई बात का स्मरण ही नहीं था!
होशिन ने उनसे कहाः यह उचित है कि परंपरानुसार मैं एक विदा-गीत लिखूं--लेकिन न तो मैं कोई कवि हूं और न ही मेरे हस्ताक्षर अच्छे हैं, फिर भी मैं बोलता हूं और तुममें से कोई लिख ले।
शिष्यों ने समझा कि निश्चित ही वह मजाक कर रहा है, लेकिन मजाक ही मजाक में से एक लिखने को भी बैठ गया।
होशिन ने लिखवायाः मैं आया आलोक से,
और, लौटता हूं पुनः आलोक को।
लेकिन, क्या है इसका अर्थ?
लेकिन, चौपाई मग परंपरानुसार एक पंक्ति कम थी; इसलिए शिष्यों ने हंसते हुए भूल निकाली और कहाः गुरुदेव, एक पंक्ति अभी कम है!
होशिन हंसा और फिर उसने सिंह जैसी गर्जना की और उस गर्जना से ही चौथी पंक्ति पूरी कर वह जा चुका था।
और, क्या मैं तुझे बताऊं कि इसका अर्थ क्या है?

रजनीश के प्रणाम
13-1-1971

(प्रतिः सुश्री गुणा शाह, बंबई)

58 / ... और तब संसार ही निर्वाण है

प्यारी वंदना,
प्रेम। शब्दहीन शब्द भी हैं--और द्वारहीन द्वार भी।
जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसे देखने की विधि भी है।
और जो नहीं सुनाई पड़ता है, उसे सुनने की भी।
शरीर पर अस्तित्व बस प्रारंभ ही होता है, अंत ही।
और आकार मात्र आवरण है, आत्मा नहीं।
इसीलिए, मैं कभी चुप रह कर भी बोलता हूं।
और कभी बोल कर भी चुप रहता हूं।

उसे तो तू पढ़ना ही जो मैंने लिखा है; लेकिन उसे मत भूल जाना जो मैंने लिखा नहीं, वरन अनलिखा ही छोड़ दिया है।
वीणा के स्वर जब विलीन हो जाते हैं, और तार निस्पंद, तब भी संगीत तो बहता ही रहता है; और जिसने उस संगीत को नहीं सुना, उसने संगीत सुना ही नहीं है।
सूर्य के विदा हो जाने पर भी आलोक तो विदा नहीं होता है और जिसने आलोक में ही बस आलोक देखा है, उसने आलोक देखा ही कहां है?
अंधकार में भी जब आंखों आलोक ही देखता हैं; तभी शरीर में आत्मा के दर्शन होते हैं और तब विष अमृत है और मृत्यु जीवन है और संसार ही निर्वाण है।

रजनीश के प्रणाम
12-1-1971

(प्रतिः सुश्री वंदना पुंगलिया, 101 दिंबर मार्केट, पूना: 2)

59 / समर्पण ही साधना है

प्यारी शिरीष,
प्रेम। शुभ है अपूर्णता का बोध।
मंगलदायी है अज्ञान का स्मरण।
श्रेयस्कर है स्वयं की असहायावस्था की प्रतीति।
क्योंकि, ऐसे बोध में से ही पूर्णता का द्वार खुलता है।
और स्वयं को समग्ररूपेण असहारा (भमसचसमे)समझना ही प्रभु को स्वयं पर कार्य करने का अवसर देना है।
क्योंकि, समर्पण ही साधना है।
सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेक शरणं व्रज।

रजनीश के प्रणाम
13-1-1971
(प्रतिः सौ. शिरीष पै, शक्ति, वरली, बंबई: 18)

60 / मौन संप्रेषण

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम! एक अपरिचित-अनजान व्यक्ति ने बुद्ध से पूछाः शब्दों से नहीं,
और निःशब्द से भी नहीं--लेकिन फिर भी क्या आप सत्य के संबंध में मुझसे कुछ कहेंगे? बुद्ध हंसे और मौन रहे।
उस अपरिचित: अनजान व्यक्ति ने उनकी आंखों में झांका और फिर उनके चरणों में सिर रख बुद्ध को धन्यवाद दिया और कहाः आपकी प्रीतिपूर्ण करुणा से मेरे संदेह दूर हुए आपके अमृत आशीषों की छाया में मैं सत्य-पथ पर प्रवेश करता हूं।
और जब वह अपरिचित-अनजान व्यक्ति जा चुका तो आनंद ने बुद्ध से पूछाः उसे मिला ही क्या होगा?
बुद्ध फिर हंसे और बोलेः अच्छे घोड़े कोड़े की छाया से ही गति पकड़ लेते हैं। (वि तीमूपच.)

रजनीश के प्रणाम
14-1-1972

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य , संस्कार -तीर्थ , आजोल)

61 / आयाम-शून्य आयाम

मेरे प्रिय ,

प्रेम। एक शिष्य ने केम्बो (ज्ञंउइव) से पूछाः सभी बुद्ध पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं , और सभी युगों के। लेकिन , वह मार्ग कहां है और कहां से प्रारंभ होता है ? (रूमतम कवमे जींज तवंक ?)

कैंबो ने अपनी छड़ी उठा कर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहाः वह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है। (भमतम पज पे इमहपदे)।

यही शिष्य फिर उमोन (न्नऊवद)के पास गया और वही सवाल उससे भी पूछा।

दोपहर थी और उमोन के हाथ में पंखा था , उसने सभी दिशाओं में पंखा हिला कर कहाः वह मार्ग कहां नहीं है ? उसका आरंभ नहीं है ? (रूमतम पज पे दवज ?)

और फिर जब किसी ने ममोन (ऊनऊवद)से इस घटना का राज पूछा , तो उसने कहा , इसके पहले कि प्रथम कदम उठे मंजिल आ जाती है और इसके पूर्व कि जिह्या हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है। (जीम पितेज ेजमच पे जांमद जीम हवसं पे तमंबीमक . : इमवितम तीम जवदहनम पे उवअमक जीम ेचममबी पे पिदपेमक .

रजनीश के प्रणाम
14-1-1972

(प्रतिः श्री कमलेश शर्मा , ब्राह्मणपारा , रायपुर , मध्यप्रदेश)

62 / देखो -सोचो मत -देखो

मेरे प्रिय ,

प्रेम। जीवन नहीं बीतता , मनुष्य बीतता है।

समय नहीं चुकता , मनुष्य चुक जाता है।

लेकिन , मनुष्य का मन सदा ही जो स्वयं में होता है , उसे कहीं और प्रक्षेप (ढतवरमबज)करके देखता है।

इस भूल से बचना।

इस भ्रांति से सावधान रहना।

मनुष्य है एक ऐसा घर जो कि प्रतिपल जल रहा है।

और यह दिखाई पड़े तो छलांग लग सकती है।

देखो --सोचो मत --देखो।

सोचने से प्रक्षेपण (ढतवरमबजपवद)शुरू हो जाता है।

विचार की प्रक्रिया प्रक्षेपण की ही प्रक्रिया है।

इसलिए दो विचारों के बीच में जो अंतराल (फंच)है उसमें जाओ और देखो।

और फिर तुम जिस जीवन -क्रांति के चाहते हो , वह छाया की भांति अपने आप चली आती है।

रजनीश के प्रणाम
14-1-1971

(प्रतिः श्री जनकराय एस . व्यास . सरकारी अध्यापन मंदिर , ध्रौल , जि. जामनगर गुजरात ,)

63 / साधो सहज समाधि भली

प्रिय योग मूर्ति,
प्रेम। आह! क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि आए थे कि हरिभजन को, ओटन लगे कपास?
तब तुम न तो हरिभजन का ही अर्थ समझते हो नहीं कपास ओटने का।
जिसके लिए कपास औटने के प्रति निंदा का भाव है, वह कहीं भी क्यों न जाए, कपास ही ओटेगा।
और जो हरिभजन को जीवन की समग्रता से तोड़ कर अलग-थलग देखता है, वह आज नहीं तो कल पाएगा ही कि कपास ओट रहा है।
हरिभजन और कपास ओटने में ऐसी कोई शत्रुता नहीं है।
पूछ देखोः कबीर से।
या, गोरा कुम्हार से।
जीवन की कला तो यही है कि कपास ओटने में भी हरिभजन हो और हरिभजन में भी कपास ओटा जा सके।
इसलिए तो मेरे लिए संन्यास संसार का विरोध नहीं, वरन संसार को ही देखने का एक नया आयाम है।
संसार है कर्ता-ग्रसित दृष्टि।
संन्यास है कर्ता-मुक्त दृष्टि।
संसार है निद्रा साक्षी की।
संन्यास है जागरण साक्षी का।
कपास ओटो जागे हुए तो हरिभजन है।
हरिभजन करो सोए हुए तो कपास ओटना है।
कबीर ने इसे ही सहज समाधि कहा हैः साधो, सहज समाधि भली।

रजनीश का प्रणाम
14-1-1972

(प्रतिः स्वामी योग मूर्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल)

64 / श्रद्धा लाओ अपने पर

प्रिय योग मूर्ति,
प्रेम। मुझ पर श्रद्धा की क्या जरूरत है?
श्रद्धा लाओ अपने पर।
क्योंकि, अंततः वही मुझ पर श्रद्धा बनेगी।
और वही परमात्मा पर।
लेकिन जिसकी स्वयं पर ही श्रद्धा नहीं है; उसकी और किसी श्रद्धा का मूल्य ही क्या है।
स्वयं के प्रति अश्रद्धालु रहते हुए किसी पर श्रद्धा लाओगे भी कैसे?
तुम ही लाओगे न?
और जब तुम्हारी स्वयं में ही श्रद्धा नहीं है--तो तुम्हारे ही द्वारा लाई गई श्रद्धा में कितनी श्रद्धा हो सकेगी?
नहीं--इस दुष्चक्र में मत पड़ो।
अच्छा होगा कि प्रारंभ से ही प्रारंभ करो।

रजनीश के प्रणाम
14-1-1972

(प्रतिः स्वामी योग मूर्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल)

65 / स्वतंत्रता--मैं की नहीं, मैं से

मेरे प्रिय,
प्रेम। निश्चय ही सब कुछ छीन लूंगा तुमसे।
तुम्हें भी छीन लूंगा तुमसे।
क्योंकि, इसके पूर्व कि तुम मिटो, दुख नहीं मिटता है।
क्योंकि, इसके पूर्व कि तुम मिटो, बंधन नहीं मिटते हैं।
जीवन की परम स्वतंत्रता ही जीवन है।
और वह परम स्वतंत्रता (न्नसजपउंजम थतममकवउ)मैं की स्वतंत्रता नहीं, मैं से स्वतंत्रता है।

रजनीश के प्रणाम
15-1-1972
(प्रतिः श्री जनकराय एस. व्यास, सरकारी अध्यापन मंदिर, ध्रौल, जि. जामनगर गुजरात)

66 / शास्त्रों से सावधान

मेरे प्रिय,
प्रेम। शास्त्र उलझा सकते हैं--शास्त्र भटका सकते हैं।
इसलिए जो शास्त्रों से सावधान नहीं है, वह सत्य तक पहुंचने के पूर्व
ही यात्रा का अंत समझ लेता है।
एक शिष्य ने उमोन (न्नऊवद)से कहाः बुद्ध का प्रकाश सारे विश्व को प्रकाशित करता है। बुद्ध की प्रज्ञा सारे जगत को आंदोलित करती है।
लेकिन, वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि उमोन ने कहाः आह! क्या तुम किसी और की पंक्तियां नहीं दोहरा रहे हो?
शिष्य झिझका तो उमोन ने उसकी आंखों में ध्यान से देखा।
घबड़ा कर शिष्य ने कहाः हां।
उमोन बोलाः तब तुम मार्ग-च्युत हो गए हो।

रजनीश के प्रणाम
15-1-1072

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

67 / सत्य: भ्रम का अभाव है

मेरे प्रिय,
प्रेम। निनाकावा मृत्युशय्या पर था तभी इक्कयु (सालन)उससे मिलने आया। इक्कयु ने आते ही कहाः क्या मैं मार्गदर्शन करूं? (एींसस ट समंक लवन?)यह सुन कर निनाकावा (छपदं ज्ञूं)ने आंखें खोलीं और कहाः मैं अकेला आया था और अकेला जा रहा हूं। और तुम मेरी क्या सहायता कर सकोगे? (हवंसवदम, लवन इम जव उम?)
इक्कयु हंसा और बोलाः यदि तुम सोचते हो कि सच ही तुम आते-जाते हो तो
तुम भ्रम में हो। तब मुझे वह बताने दो जिस पर कि न जाना है, न आना है।: (टि जीपदा लवन तमंससल बवउमंदक व, जींज पे लवनत कमसनेपवद. लवन जीम चंजी वदूपबी पे दव बवऊपदहंदक हवपदह.)
मनुष्य के भ्रम तो भ्रम हैं ही।
मनुष्य जिन्हें सत्य मानता है, वे भी भ्रम ही हैं।
और जो वस्तुतः सत्य है, उसे जाना तो जा सकता है, लेकिन माना नहीं।

सत्य की खोज में भी अक्सर ऐसा हो जाता है कि व्यक्ति एक भ्रम को छोड़ता है, तो ठीक उससे विपरीत भ्रम को पकड़ लेना है।
सत्य किसी भ्रम का विपरीत नहीं है।
सत्य भ्रम मात्र से मुक्ति है।
सत्य भ्रम का अभाव है।

रजनीश के प्रणाम 1
5-1-1972

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

68 / अटकना--अहंकार की पूंछ का

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। एक दिन गोसो (फवेव)ने अपने शिष्यों से कहाः एक भैंस उस आंगन से बाहर निकल गई है, जिसमें कि वह कैद थी। उसने आंगन की दीवार तोड़ डाली है। उसका पूरा शरीर ही दीवार से बाहर निकल गया है--सींग, सिर, धड़, पैर--सभी कुछ-- लेकिन पूंछ बाहर नहीं निकल पा रही है। और पूंछ कहीं उलझी भी नहीं--और पूंछ को किसी ने पकड़ भी नहीं रखा है! मैं पूछता हूं कि फिर भी पूंछ बाहर क्यों नहीं निकल पा रही है?
शिष्य सोचने लगे और गोसो हंसने लगा!
फिर उसने कहाः जिसने सोचा उसकी भी पूंछ उलझी!
शिष्य और भी जोर से विचारों में खो गए।
फिर गोसो ने कहाः जिसकी में न आवे वह पीछे लौट कर अपनी पूंछ देखे।
और फिर बहुत वर्षों बाद जब ममोन (ऊनउवद)से किसी ने इस घटना के संबंध में पूछा तो ममोन ने कहाः यदि भैंस आगे बढ़े तो खाई है; और यदि पीछे लौटे तो कारागृह है। इसलिए, वह छोटी सी पूंछ न उलझी हुई भी उलझी हुई है!
अहंकार की कठिनाई भी यही है।
आह! छोटी सी पूंछ!

रजनीश के प्रणाम
15-1-1972

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार-तीर्थ, आजोल)

69 / मिला ही हुआ है वह

प्रिय योग निवेदिता,
प्रेम। अंततः चल पड़ी तू यात्रा पर।
जन्मों से तूने यही चाहा था।
पर साहस न जुटा पाई--संकल्प न कर पाई।
अब अवसर मिला और तू साहस भी कर पाई है तो मंजिल दूर नहीं है।
निकट ही है वह जिसकी कि खोज है।
दिल के आईने में है तस्वीरे-यार।
मिला ही हुआ है वह जिससे मिलन को कि प्राण प्यासे हैं।
वस्तुतः तो उसे कभी खोया ही नहीं; लेकिन जिसे कभी नहीं खोया है--उसे भी खोजना पड़ता है!
कम से कम गर्दन तो झुकानी ही पड़ती है न?
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।

और तूने गर्दन झुका दी है।
इसलिए ही तुझे नाम दिया हैः निवेदिता।
अब स्वयं को प्रभु पर छोड़ देना है।
जो उसकी मर्जी--अब वही तेरा जीवन है।

रजनीश के प्रणाम
15-1-1972
(प्रतिः मा योग निवेदिता, कुमारी रमा, हाथीखाना, स्ट्रीट, राजकोट, गुजरात)

70 / तुम्हारा क्या ख्याल है?

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। कोकुशी ने पुकारा, ओशिन!
गुरु की आवाज पर शिष्य ने कहाः जी!
लेकिन, कोकुशी ने दुबारा पुकारा--प्रेम और करुणा से घर्राती आवाजः ओशिन
शिष्य ने सजग होकर कहा। जैसे सूर्यमुखी का फूल सूर्य से कहेः जी!
लेकिन बूढ़ा कोकुशी (ज्ञवानेप)नहीं माना--नहीं माना--उसने फिर से पुकारा--जैसे अंधेरे में खो गए बेटे को मां पुकारे, ओशिन।
शिष्य के प्राण जैसे किसी अभिनव यात्रा के लिए तैयार हो गए हों--पक्षी जैसे उड़ने के पूर्व अपने पूरो को तौले ऐसे--या कि नदी जैसे सागर में गिरने के पूर्व बोले, ऐसे ही वह पुनः बोलाः जी!
कोकुशी ने सुना तो उसकी आंखों में आंसू तैरने लगेः आनंद के आंसू-- प्रभु के प्रति अनुग्रह के आंसू।
और फिर उसने ओशिन (ठेपद)से कहाः इस भांति बार-बार पुकारने के लिए मुझे तुमसे क्षमा मांगनी चाहिए; पर वस्तुतः तो तुम्हीं मुझसे क्षमा मांगो तो ठीक है। (वनहीज जवंचवसवहप्रम जव लवन, जीपे बंससपदह; इनज तमंससल वनहीज जवंचवसवहप्रम जव उम.)
प्यारे कृष्ण चैतन्य--तुम्हारा क्या ख्याल है?

रजनीश के प्रणाम
15-1-1972

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात)

71 / योग: कर्म में कुशलता है

प्यारी मधु,
प्रेम। स्वप्न से जाग कर कैसा सब बदल जाता है?
ऐसा ही सब तेरे लिए बदल गया है।
लेकिन, जो अभी भी सोए हुए हैं--वे करें भी तो क्या करें?
वे अभी भी निद्रा में बड़बड़ाते रहेंगे--उनकी भाषा नींद की ही होगी। और उनके संदर्भ भी स्वप्न के ही होंगे।
उन पर दया रखना है; क्योंकि उन्हें भी जगाना है।
वे मुझे गलत समझें तो ठीक--लेकिन मुझे अब उन्हें गलत समझने का कोई भी उपाय नहीं है।
ज्ञान शक्ति ही नहीं, दायित्व भी है।
और मैं आनंदित हूं कि तू अपना दायित्व भी समझती है और उसे कुशलता से निबाह भी रही है।

मधु, योग कर्म में कुशलता है।

रजनीश के प्रणाम
15-1-1972

(प्रतिः मा आनंद मधु, विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजोल)

72 / प्यासों को ही कुआं तक आना होगा

मेरे प्रिय,
प्रेम। अब तक तो कुआं प्यासें तक जाता रहा; लेकिन
शायद अब ऐसा न हो सकेगा।
अब तो प्यासें को ही कुआं तक आना होगा।
और शायद यही नियमानुसार भी है!
नहीं क्या?
मैं यात्राएं करीब-करीब बंद कर रहा हूं।
खबर पहुंचा दी गई है--अब जिसे खोजना है, वह मुझे खोज लेगा।
और जिसे नहीं खोजना है, मैंने भलीभांति उसके द्वार पर भी दस्तक देकर देख ली है!

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः श्री ओमप्रकाश अग्रवाल, एन. के 175 चरणजीतपुर, जालंधर, पंजाब)

73 / अब गहन कार्य में लगता हूं

मेरे प्रिय,
प्रेम। मेरी यात्राएं करीब-करीब पूरी हो गई हैं।
जिनसे किसी जन्म में किए गए वायदे थे, वे मैंने निभा दिए हैं।
अब तो मैं एक ही जगह रुकूंगा।
जिन्हें आना है, वे आ जाएंगे।
वे सदा ही आ जाते हैं।
और शायद इस भांति मैं उनके ज्यादा कम भी आ सकूं जिन्हें कि वस्तुतः मेरी जरूरत है।
विस्तृत कार्य कर चुका--अब गहन कार्य में लगता है।
पुकार आया गांव-गांव लोगों को, अब उनके आने की प्रतीक्षा करता हूं।
ऐसा ही है आदेश अब अंतर का।
और उस आदेश से अन्यथा न तो मैंने कभी कुछ किया है, न कर ही सकता हूं।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः श्री हीरालालजी कोठारी, दांत भेरू, उदयपुर, राजस्थान)

74 / सम्यक निष्कर्षों का जन्म--धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा से

प्यारी मीरा,

प्रेम। मार्ग में सदा ही कठिनाइयां हैं--लेकिन साधक के लिए सभी कठिनाइयां अंततः सहयोगी ही होती हैं।
प्रभु के मार्ग पर कांटे भी हैं; लेकिन उन्हीं के लिए जो कि मात्र दर्शक ही हैं--लेकिन, जो उस मार्ग पर चलता है उसके लिए दूर से जो कांटे दिखाई पड़ते थे; वे ही पास आने पर फूलों में परिणत हो जाते हैं।
यह मैं अपने अनंत अनुभवों के आधार पर कहता हूं।
और जानता हूं कि शीघ्र ही तू भी मेरी गवाही देगी।
संसार के मार्ग में और धर्म के मार्ग में यही आधारभूत अंतर हैः संसार
के मार्ग पर दूर से जो फूल मालूम होते हैं, वे निकट आने पर कांटे सिद्ध होते हैं: और धर्म के मार्ग पर ठीक उलटी ही घटना घटती है।
संसार के मार्ग की गवाही तो कोई भी दे सकता है न?
और यदि दूर से दिखाई पड़ने वाले फूल अंततः कांटे निकल सकते हैं, तो इससे उल्टा होने में बाधा ही क्या है?
फिर भी मेरी बात मानना काफी नहीं है--चल और देख।
और जल्दी निष्कर्ष लेने की आदत छोड़।
जीवन अत्यंत जटिल है--उसकी सरलता भी परम जटिलता है: इसलिए निष्कर्षों
की जल्दी करना--धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा सम्यक निष्कर्षों को स्वतः चित्त के द्वार पर ले जाती है।
डाक्टर को प्रेम।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

75 / वही है--अब मैं कहां हूं?

प्यारी तृप्ता,
प्रेम। मेरी याद आती है तो उसमें ही लीन हो।
वही प्रभु का द्वार बन जाएगी।
आंखों में आंसू भर जाएं तो उनके साथ ही एक हो जा।
वे ही प्रभु के मार्ग बन जाएंगे।
असली बात हैः खोना--स्वयं को खोना।
क्योंकि जो स्वयं को खोता है, वह उसे पा लेता है।
अपने आपको पचाना भर नहीं।
इतना ही ध्यान तू रख।
और शेष मुझ पर छोड़ दे।
मुझ पर यानी उसी पर।
क्योंकि, अब मैं कहां हूं?

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः श्रीमती तृप्ता सिंगल, मकान नं. एन. के. 116, चरणजीतपुर, जालंधर शहर, पंजाब)

76 / तीन सूत्र--साक्षी-साधना के

प्रिय अक्षय भारती,
प्रेम। साक्षीभाव की साधना के लिए इन तीन सूत्रों पर ध्यान दोः

1. संसार के कार्य में लगे हुए श्वास के आवागमन के प्रति जागे हुए रहो। शीघ्र ही साक्षी का जन्म हो जाता है।
2. भोजन करते समय स्वाद के प्रति होश रखो। शीघ्र ही साक्षी का आविर्भाव होता है।
3. निद्रा के पूर्व जब कि नींद आ नहीं गई है और जागरण जा रहा है--सम्हलो
और देखो। शीघ्र ही साक्षी पा लिया जाता है।

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः स्वामी अक्षय भारती, श्री बी. जी. उपाध्याय, राजपुरा नं. 2, वायाः तनसा (बी. एम. टी.), भावनगर, गुजरात)

77 / उसकी ही मर्जी पर सब छोड़ा है

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीसस की भांति मारे जाने से बड़े सौभाग्य की और क्या बात हो कसती है?
वैसा तो तभी होता है जब कि परमात्मा किसी के जीवन से नहीं, वरन किसी की मृत्यु से भी काम लेना चाहता है।
मैंने तो स्वयं को उसकी ही मर्जी पर छोड़ा है।
अब तो उसके ही भरोसे है जीवन--और उसके भरोसे है मृत्यु।
और इसलिए अब जीवन और मृत्यु में भी कोई भेद नहीं रहा है।
वह भेद ही स्वयं के भरोसे चलने से पैदा होता है।
अहंकार के अतिरिक्त जीवन और मृत्यु में और कोई भेद-रेखा नहीं है।
और अहंकार के अतिरिक्त सिंहासन और सूली में भी क्या भेद है?

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः श्री जनकराय एस. व्यास, सरकारी अध्यापन मंदिर, ध्रौल, जि. जामनगर, गुजरात)

78 / मंजिल के लिए मार्ग का अतिक्रमण आवश्यक

मेरे प्रिय,
प्रेम। मंजिल तो अंततः मार्ग के अतिक्रमण (ैंतंदेबमदकमदबम)से ही आती है।
क्योंकि, जहां तक मार्ग है, वहां तक मंजिल कहां?
मार्ग को पकड़ना भी पड़ता है और फिर छोड़ना भी।
निश्चय ही पकड़ना आसान और छोड़ना कठिन है।
क्योंकि, मन साधना को ही साध्य बना लेता है।
मन की माया इसी विधि पर ही तो आधारित है।
इसलिए तो संप्रदाय धर्म से भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।
साधन की भांति तो वे ठीक हैं, खतरा उनके साध्य बनने से पैदा होता है।
फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने ही मार्ग से चलता है।
और प्रत्येक को अपना ही मार्ग छोड़ना पड़ता है।
यद्यपि जहां पहुंचा जाता है, वह भिन्न-भिन्न नहीं है।
फिर भी जैसे ही उस अनुभव को व्यक्त किया, वह पुनः भिन्न-भिन्न मालूम होने लगता है।

क्योंकि, भाषा मार्गों से मिलती है और मंजिल मौन है।
क्योंकि, अभिव्यक्ति तो होगी शब्दों में और अनुभूति मौन है।

रजनीश के प्रणाम।
16-1-1972

(प्रतिः डाक्टर विद्याचरण शाह, हीराबाग धर्मशाला, बंबई: 4)

79 / पिछले जन्मों के वायदे

मेरे प्रिय,
प्रेम। ऐसा विगत जन्म में दिया गया अनेक मित्रों का मेरा आश्वासन था
कि जब सत्य मिले तो मैं उन्हें खबर कर दूंगा।
वह खबर मैं कर चुका।
भारत में मेरी यात्राएं इसलिए अब समाप्त ही हैं।
निश्चय ही भारतेतर मित्र भी कुछ हैं--उनसे संबंध--सेतु बना रहा है।
यद्यपि, मित्रों को लिए गए वायदे की कुछ भी खबर नहीं है--आपको ही कहां
अब साधारणतः मैं एक ही जगह सकूंगा।
इससे साधकों पर ज्यादा ध्यान भी दे सकूंगा।
और जिन्हें सच ही जरूरत है, उनके ज्यादा काम भी आ सकूंगा।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, जीवन-जागृति केंद्र, पथ 1. राजेंद्रनगर, पटना: 16, बिहार)

80 / अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है--उठो और चलो

प्रिय कन्हैया,
प्रेम। शक्ति तो है स्वयं में बहुत--जैसे छोटा सा कुआं भी अंततः अनंत सागर से जुड़ा है--ऐसे ही तुम भी जुड़े हो।
लेकिन, न बेचारे कुएं को अनंत सागर का पता है, न तुम्हें ही!
पर कुएं को माफ किया जा सकता है--तुम्हें नहीं।
निर्वीर्य तुम अपने हाथों बने हो।
और बिना हारे ही व्यर्थ हार गए हो।
हार कर भी हारने में एक शोभा है--ज्ञान है।
चल कर भटक जाने की भी अपनी गरिमा है।
चढ़ने की कोशिश में गिर जाने का भी गौरव है।
लेकिन, उन्हें क्या कहा जाए जो इस डर से कभी चले ही नहीं कि कहीं भटक न जाएं।
और तुम उन्हीं में से एक हो।
लेकिन अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं हैः उठो और चलो।
भूलें होती हैं, लेकिन सिर्फ उन्हीं से, जो कुछ करते हैं।
कुछ न करने वालों से कभी कोई भूल नहीं होती है, लेकिन कुछ न करने से बड़ी और क्या भूल हो सकती है?

रजनीश के प्रणाम
16-1-1972

(प्रतिः कन्हैया गौरक्षक , महात्मा गांधी मार्ग , जालना , महाराष्ट्र)

81 / कल का कोई भी भरोसा नहीं

मेरे प्रिय ,
प्रेम। प्रतीक्षा कब तक ?
समय तो सदा ही थोड़ा है !
और, कल का कोई भी भरोसा नहीं है।
साहस करें --संकल्प करें।
संसार को नहीं --स्वयं को देखें।
शुभ को कभी स्थगित न करें।
अशुभ को सदा स्थगित करें।
लेकिन , क्या अभी इससे ठीक उलटा नहीं कर रहे हैं ?

रजनीश के प्रणाम
16.1.1971

प्रतिः डाक्टर हेमंत शुक्ला , जूनागढ़ , गुजरात

82 / सागर बिच मीन पियासी

प्यारी कुसुम ,

प्रेम। एक मछली ने एक दिन मछलियों की रानी से पूछाः ‘मैं सदा से सागर के संबंध में सुनी आ रही हूं , पर यह सागर है क्या ? और है भी या नहीं ? और है तो कहां है ?’

मछलियों की रानी हंसी और बोलीः ‘पागल ! तू सागर में ही जीती है , तैरती है , श्वास लेती है --तेरा सारा अस्तित्व ही सागर में है ! सागर ही तेरे भीतर है और सागर ही तेरे बाहर है। सागर से ही तू जन्मी है , सागर से ही तू निर्मित है और अंततः सागर में ही लीन हो जाना तेरी नियति है। ’

मछली ने सुना , पर शायद सुना नहीं !
मनुष्य ही कहां सुनता है --सो वह तो थी बेचारी मछली !
या सुना भी तो मछली समझी नहीं !
मनुष्य ही कहां समझता है ?
उसने चारों ओर देखा --पर सागर कहीं दिखाई नहीं पड़ा !
सोचा ; शायद सागर अदृश्य है !
आह! मछलियां भी कितना मनुष्यों जैसा ही सोचती हैं ?

और फिर यह भी सोचा कि शायद मैं अपात्र हूं और इसलिए ही सागर से मिलन नहीं होता है !

और मैं सोचता हूं कि मछली थी या मनुष्य ?
तुझसे भी पूछता हूं , तो भी बताः वह मछली थी या मनुष्य ?
कपिल को प्रेम।
असंग को अशीष।

रजनीश के प्रणाम
16.1.1971

(प्रतिः सुश्री कुसुम डाक्टर धठ श्री कपिल मोहन चांधोक क्वाल्टी आइस्क्रीम , 10 ए, इंडस्ट्रियल एरिया , लुधियाना , (पंजाब)

83 / स्मरण रखेंः सब शून्य है

मेरे प्रिय,
प्रेम! जो होता हो होने दें--आप तो अब ऐसे हो रहें कि जैसे हैं ही नहीं।
किसी को किसी बात में बाधा न दें।
सलाह नहीं--सुझाव नहीं।
कोई पूछे तो बात और।
तब जो सहज सूझे वही कह दें।
और फिर भूल जाएं कि क्या कहा--क्या नहीं कहा।
यह तो ध्यान में रखे ही नहीं कि जो कहा वह माना गया या नहीं माना गया।
प्रतिपल जिएं।
प्रतिपल अतीत के बाहर होते रहें।
प्रतिपल से ज्यादा जीवन नहीं है।
सांझ सोएं तो जानें कि अंतिम सांझ है।
सुबह उठें तो नये--कल के प्रति समग्ररूपेण मुक्त हुए।
स्मरण रखेंः सब शून्य है।
पानी में उठे बबूलों-जैसा सब रिक्त है।
और इस रिक्तता में तैरा तो जा ही नहीं सकता है।
इसलिए बहें।
लक्ष्यहीन--प्रयास-मुक्त।
जैसे कभी आकाश में चील तिरती है--निश्चेष्टः ऐसे ही।

रजनीश के प्रणाम
16.1.1971

(प्रतिः श्री सुंदरलाल जी जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-7)

84 / खोजो-स्वयं में छिपे प्रभु को

प्रिय जयंत,
प्रेम! मनुष्य एक तनाव है--पशु और प्रभु के बीच।
मनुष्य अवस्था नहीं--बस एक संक्रमण है।
यही उसका सौभाग्य भी है और यही उसकी पीड़ा भी।
शायद कोई सौभाग्य पीड़ा के नहीं हो सकता है, इसीलिए।
शिखर बिना खड्ड-खाइयों के होना भी चाहें तो कैसे हो सकते हैं?
इसलिए मनुष्य होना एक चिंता है--एक गहन संताप।
या तो पशु होने में विश्राम है, या प्रभु होने में।
पशु में वही विश्राम है जो कि अज्ञान और अंधकार और निद्रा की मूर्च्छा में है।
और प्रभु में वही विश्राम है जो कि ज्ञान, मुक्ति और प्रकाशोपलब्धि में है।
फिर मनुष्य होकर कोई पशु होना भी चाहे तो नहीं हो सकता है।
क्योंकि, वापस पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए, बढ़ो आगे--खोजो स्वयं में छिपे प्रभु को।
तोड़ो बीज और बनो वृक्ष।

रजनीश के प्रणाम
16.1.1971

(प्रतिः श्रीयुत जयंतकुमार, लोहानीपुर, कदमकुआं, पटना-3, बिहार)

85 / स्वप्नों में मत खोना

प्यारी रंजना,
प्रेम! स्वप्नों में मत खोना।
खोना तो प्रीतिकर लगता है, लेकिन फिर सब स्वप्न टूटते हैं--टूटते ही हैं; और बहुत तिक्त और कडुवा स्वाद प्राणों में छोड़ जाते हैं।
और ध्यान रखना कि कोई भी अपवाद 9 गबमचजपवद 0 नहीं है।
यघपि प्रत्येक का मन स्वयं को और स्वयं के स्वप्नों को अपवाद मानने
का होता है!
जीवन को बना प्रारंभ से ही सत्य पर--यथार्थ पर।
शायद, स्वप्नों जैसा सुखद न भी लगे लेकिन जैसे-जैसे सत्य में गहरे उतरना होता है, वैसे ही रस के नये-नये झरने प्राप्त होते चलते हैं।
स्वप्नों के मार्ग से स्वर्ग तक कोई कभी नहीं पहुंचा है।
स्वर्ग के द्वार का नाम हैः सत्य।
स्वप्न प्रलोभन स्वर्ग का देते हैं--लेकिन पहुंचा देते हैं सदा ही-- अचूक नरक में।

रजनीश के प्रणाम
16.1.1971

(प्रतिः सुश्री रंजना, डाक्टर धठ श्री जयंतकुमार, लोहानीपुर कदम कुआं, पटना-3)

86 / श्रद्धा का दुर्लभ द्वार

प्यारे किरण,
प्रेम! जानता हूं तुम्हारे आनंद को।
जानता हूं तुम्हारी छलांग को।
तुमने जाना, उससे भी पहले से जानता हूं।
बीज छिपा था।
तुम तो जानते भी कैसे?
पर अंकुरित होने की अभीप्सा थी--और उससे तुम भलीभांति परिचित थे।
अब बीज में पहला अंकुर फूटा है तो तुम स्वयं की संभावना से पहली बार परिचित हुए हो।
अंकुर वृक्ष भी बनेगा।
और अनंत फूल भी उस वृक्ष पर खिलेंगे।
यह भी तुम अभी कैसे जानोगे?
होने के पहले तो जानने का कोई उपाय ही नहीं है न?
लेकिन अब तुम अनुमान कर सकते हो।
और अज्ञात में भरोसा भी।
इसे ही मैं श्रद्धा कहता हूं।
अब श्रद्धा प्रारंभ होती है तुम्हारे जीवन में।
इस अमूल्य क्षण में तेरी समस्त प्रार्थनाएं तुम्हारे साथ हैं।

रजनीश के प्रणाम
21.1.1971

(प्रतिः श्री किरण, पूना)

87 / स्वयं से मिले कि मुझसे मिले

मेरे प्रिय,
प्रेम। बाहर न खोजें मुझे।
वहां मैं मिलूं तो भी मिलन न हो सकेगा।
खोजें भीतर।
वहां न भी मिलूं तो मिलन हो सकेगा।
स्वयं से मिले कि मुझसे मिले।

रजनीश के प्रणाम
20.1.1971

(प्रतिः श्री गोपाल नारायण मोहले, वाणिज्यकर अधिकारी, व्यापर, राजस्थान)

88 / अनन्य (अपने) के साथ कैसा भय!

प्रिय मंजु,
प्रेम।
मैं अन्य होता तो निर्भरता’॰मचमदकमदबम 0 का भय तुझे हो सकता था!
लेकिन मैं अन्य तो नहीं हूं न?
अनन्य के साथ भय नहीं है।
सब भय--भय मात्र ‘पर’ 9=ीम वजीमते0 के साथ है।
‘मैं तू’ का सब पागलपन छोड़!
जो है वह न मैं, न तू है।
अब उसी में डूब, अब उसी में जी।
अब सब मैं--तू छोड़ बस एक ही शरण में ही आ।
‘मामेक’ शरणं ब्रज।’

रजनीश के प्रणाम
20.1.1971
(प्रतिः सुश्री मंजु शाह, घाटकोपर बंबई-81)

89 / दीये की परीक्षा--आंधियों में ही

प्यारी शिरीष,
प्रेम। लगता है कि मेरे ध्यान के दीये में अब ज्योति पकड़ गई है!
अब उसे सम्हालना।
बुझे दिए के पास तो सम्हालने को कुछ भी नहीं होता है--लेकिन दीये के जलते ही आंधियों परीक्षा लेने को आ जाती हैं।

रजनीश के प्रणाम
21.1.1971

(प्रतिः सौ. शिरीष पै, बंबई)

90 / मिलन के पूर्व की विरह पीड़ा

प्यारे चीनु,
प्रेम। प्रेम फूटेगा।
प्रेम का झरना बहेगा।
प्रेम के फूटने और बहने की आतुरता से ही तो तुम आंदोलित हो।
उसी से तो हृदय कंपित है।
उसी से तो आंखों की नींद खो गई है।
अतिथि की प्रतीक्षा जो है।
उसकी पगध्वनि भी सुनाई पड़ती है।
उसकी सुगंध भी आती है।
इसलिए तो बेचैनी और भी ज्यादा है।
भोर फूटने के पहले जैसे रात का अंधेरा बढ़ जाता है, ऐस ही मिलन के पूर्व विरह की पीड़ा भी बढ़ जाती है।
सहो इस पीड़ा को, क्योंकि यह सौभाग्य है।

रजनीश के प्रणाम
21.1.1971

(प्रतिः श्री चीनु बी.शाह, अहमदाबाद)

91 / भय अंधकार है और अभय आलोक

मेरे प्रिय,
प्रेम। बढ़ो आगे निर्भय हो।
क्योंकि प्रभु सदा साथ है।
अंधकार है केवल उन्हीं के लिए जो कि भयभीत हैं।
भय के अतिरिक्त और कोई अंधकार नहीं है।
अभय आलोक हैं।
अभय पूर्वक ध्यान में उतरो।
अभय के मार्ग से ध्यान के मंदिर में प्रवेश करो।
देखो--मंदिर के द्वार सदा ही खुले हैं।
लेकिन, भय से भरे चरण उठ ही नहीं पाते हैं।
एक कदम उठाओ तुम तो हजार कदम तुम्हारी स्वयं प्रभु भी उठाता है।
आह! धर्म का मार्ग अदभुत। क्योंकि तुम्हीं नहीं चलते हो मंदिर की ओर, वरन मंदिर भी तुम्हारी ओर चलता है।

रजनीश के प्रणाम
22-1-1972

(प्रतिः श्री गोपाल नारायण मोहले, ब्यावर राजस्थान)

92 / स्वयं को पाना हो तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। फकीर झुगान (र्नपहंद)सुबह होते ही जोर से पुकारताः झुगान! झुगान!
सूना होता उसका कक्ष।
उसके सिवाय और कोई भी नहीं।
सूने कक्ष में स्वयं की ही गूंजती आवाज को वह सुनताः

झुगान ! झुगान !
उसकी आवाज को आस-पास के सोए वृक्ष भी सुनते।
वृक्ष पर सोए पक्षी भी सुनते।
निकट ही सोया सरोवर भी सुनता।
और फिर वह स्वयं ही उत्तर देताः जी ! गुरुदेव ! आज्ञा ! गुरुदेव !
उसके इस प्रत्युत्तर पर वृक्ष हंसते।
पक्षी हंसते।
सरोवर हंसता।
और फिर वह कहताः ईमानदार बनो, झुगान ! स्वयं के प्रति ईमानदार बनो !
वृक्ष भी गंभीर हो जाते।
पक्षी भी।
और वह कहताः जी ! गुरुदेव !
और फिर कहताः स्वयं को पाना है तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना !
वृक्ष भी चौंक कर स्वयं का ध्यान करते।
पक्षी भी।
सरोवर भी।
और झुगान कहताः जी, हां ! जी, हां !
और फिर इस एकालाप के बाद झुगान बाहर निकलता तो वृक्षों से कहताः सुना ?
पक्षियों से कहताः सुना ?
सरोवर से कहताः सुना ?
और फिर हंसता।
कहकहे लगाता।
कहते हैं वृक्ष को, पक्षियों को, सरोवरों को उसके कहकहे अभी भी याद है।
लेकिन, मनुष्यों को ?
नहीं--मनुष्यों को कुछ भी याद नहीं है।
लेकिन, प्यारे कृष्ण चैतन्य--तुम याद रखना।
तुम मत भूलना।
यह मनो-नाटक (ऊवदव क्तंउं)तुम्हारे बड़े काम का है।
इसका तुम रोज अयास करना।
सुबह उठ कर--उठते ही बुलाना जोर से--कृष्ण चैतन्य !
ध्यान रहे कि धीरे नहीं--बुलाना है जोर से।
इतने जोर से कि पास-पड़ोस सुने। कृष्ण चैतन्य !
फिर कहनाः जी ! गुरुदेव !
फिर कहनाः स्वयं को पाना है तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना !
और फिर कहनाः जी, हां ! जी हां !
और यह सब इतने जोर से कहन ताकि तुम्हें ही नहीं, और को भी इसका लाभ हो।
फिर हंसते हुए बाहर आना।
कहकहे लगाना।
और हवाओं से पूछनाः सुना ?
बादलों से पूछनाः सुना ?

रजनीश के प्रणाम
22-1-1972

(प्रतिः श्री स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात)

93 / एक मिट गए व्यक्ति का रहस्य

प्यारी सावित्री,
प्रेम। निश्चय ही मेरी आंखों में देखेंगी तू तो शांत हो ही जाएगी।
क्योंकि, उन आंखों के पीछे मैं जो नहीं हूं।

और जो है , उसके संबंध में कुछ न कहना ही उचित है।
क्योंकि उसके संबंध में कुछ कहा ही नहीं जा सकता है।
फिर कहे भी कौन ?
और कहे किससे ?
इसलिए , मौन ही वहां वाणी है।
और मौन ही वहां मुखरता है।

रजनीश के प्रणाम
22-1-1972

(प्रतिः डाक्टर सावित्री पटेल , पो . किल्ला परडी , बलसार)

94 / अशरीरी के अस्वस्थ होने का उपाय ही कहां है ?

प्यारी शिरीष ,
प्रेम। जान कर ही शरीर की बात नहीं लिखी थी।
जो मैं नहीं हूं --उसकी बात लिखने की बात ही कहां है ?
और सबसे यह जन्म तब से मेरे अस्वस्थ होने का उपाय ही नहीं रहा है।
शरीर में जरूर परिवर्तन होते रहते हैं।
उसे तो होने की तैयारी भी करनी पड़ती है न ?

रजनीश के प्रणाम
22-1-1972
(प्रतिः सी . शिरीष पै बंबई)

95 / नाव सामने हैं , फिर चिंता कैसी ?

मेरे प्रिय ,
प्रेम। समय पर --ठीक समय पर ही वह नाव मिलती है , जो कि पार ले जाती है।
ऐसा नहीं कि नाव पहले नहीं थी।
नाव तो सदा है , लेकिन यात्री को जब तक पार न जाना हो तब तक वह दिखाई नहीं पड़ती है।
ऐसा भी नहीं है कि नाव अदृश्य है।
नाव तो सदा ही आंखों के सामने है , लेकिन जब तक यात्री को पार नहीं जाना है तब तक उसका ध्यान ही नाव पर नहीं जाता है।
लेकिन , अब चिंता न करो।
तुम्हें पार जाना है।
नाव सामने है।
फिर चिंता कैसी ?

रजनीश के प्रणाम
22-1-1972

(प्रतिः श्री कृष्णदत्त दीक्षित्त , 12-346, बेलासि , ब्रिज , तारदेव , बंबई -34)

96 / दो ही विकल्प --आत्म -घात या आत्म -क्रांति

प्यारी बकुल ,

प्रेम। परिस्थिति नहीं--तेरी मनःस्थिति ही दोषी है।
ऐसी मनःस्थिति हो तो किसी भी परिस्थिति में दुख उत्पन्न होता है।
महत्वाकांक्षा दुख की जननी है।
अति-महत्वाकांक्षा विक्षिप्त की।
मन को पहचान अपने।
वही तुझे रुग्ण अपन।
वही तुझे रुग्ण किए है।
शरीर भी उससे ही प्रभावित है।
दोष ही खोजना है तो स्वयं में खोज।
क्योंकि, तब कुछ किया जा सकता है।
दूसरों में दोष खोजना खाज को खुजलाने जैसा है।
उससे रोग और बढ़ता है, घटता नहीं।
क्योंकि, मूल कारण सदा स्वयं में हैं।
और दूसरों में दोष देखने से वे और भी सुरक्षित होत हैं।
इस भांति हम स्वयं ही अपने रोगों का पोषण करते हैं।
यह वृत्ति क्रमिक आत्मघात है।
और आत्मघात (एनपबपकम)या आत्म-क्रांति () बस दो ही विकल्प हैं।
इन दो में से एक तुझे चुनना है।
और बिना चुनाव किए जीती रहेगी तो ऐसा मत सोचना कि चुनाव से बच रही है।
चुनाव से बचा ही नहीं जा सकता है।
न चुनना: पहले विकल्प को चुनना है।

रजनीश के प्रणाम
22-1-1971

(प्रतिः सुश्री बकुल, बंबई)

97 / संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है

मेरे प्रिय,
प्रेम। सोच-विचार कैसा?
क्षण का भी तो भरोसा नहीं है।
समय तो प्रतिपल हाथ से चुकता हो जाता है।
और मृत्यु न पूछ कर आती है।
न बता कर ही।
फिर संन्यास का अर्थ हैः सहज जीवन।
वह आरोपण नहीं; विपरीत समस्त आरोपणों से मुक्ति है।
संन्यास तुम्हारा निर्णय भी नहीं है।
वह तो तुम से ही छुटकारा जो है।
संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है।

रजनीश के प्रणाम
22-1-1971

(प्रतिः श्री शिव, जबलपुर, म. प्र.)

98 / जो मूर्च्छित है, उसे होशपूर्वक करो

मेरे प्रिय,
प्रेम। मैं तुम्हारी कठिनाई समझा।

लेकिन, उससे लड़ कर तुम उसे और भी जटिल बना रहे हो।
लड़ो मत।
वरन, चलने के जिस ढंग से तुम बचना चाहते हो, जान बूझ कर वैसे ही चलो।
न तो मानस-शास्त्रियों के उलझाव में पड़ो।
और न अब भविष्य में बिजली के शॉक ही लो।
यदि तुम जान-बूझ कर, होशपूर्वक, सचेष्ट, नपुंसकों जैसे चल सके, जैसे कि अभी तुम मजबूरी में और मूर्च्छित हो चलने लगते होता शीघ्र हो तो शीघ्र ही तुम इस आदत के बाहर हो जाओगे।
अनायास ही।
तुम्हारी मनस-चिकित्सा का मूल सूत्र लिखता हूंः जो मूर्च्छित है, उसे होशपूर्वक करो या जो अनैच्छिक (छवद-अवसनदजंतल)है उसे ऐच्छिक (विंसनदंजंतल) बनाओ।
क्योंकि, हम अनैच्छिक से मुक्त नहीं हो सकते हैं।
मुक्त हम उससे ही हो सकते हैं जो कि ऐच्छिक है।
इसलिए, अनैच्छिक से मुक्त होने के पूर्व उसे ऐच्छिक में रूपांतरित करना अति आवश्यक है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1972

(प्रतिः एक साधक, पूना)

99 संक्रमण की पीड़ा

प्यारी चीनु,
प्रेम। संक्रमण के क्षण मग जीवन शुष्क हो जाता है।
पुराना जा रहा होता है इसलिए।
परिचित विदा होता है इसलिए।
जाने-माने रोगों तक से एक भराव होता है।
जंजीरें तक आदम बन जाती है।
वर्षों का कैदी जब कारागृह के बाहर आकर खड़ा होता है तो जैसा अस्तव्यस्त हो जाता है, ऐसी ही तुम्हारी स्थिति भी है।
लेकिन शीघ्र ही नया अंकुरित होगा।
नये मार्ग पर चरण पड़ेंगे।
अज्ञात से मिलन होगा।
और ऐसी हरियाली से जीवन भर जाएगा जो कि फिर कभी मुरझाती नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1972

(प्रतिः श्री चुनी बी. शाह, अहमदाबाद)

100 / स्वयं को पाया तो सब पाया

प्रिय धर्म समाधि,
प्रेम। प्रकाश बढ़ेगा।
ध्यान के साथ-साथ ही प्रकाश भी बढ़ेगा।
फिर तो तू भी मिटेगी और प्रकाश ही बचेगा।
जब जानना (ज्ञदवूपदह)ही बचता है और जानने वाला (ज्ञदवूमत)भी खो जाता है, तभी जानना कि जानना प्रारंभ हुआ है।

अधिकतम शक्ति और समय और संकल्प साधना के लिए है।
क्योंकि शेष सब अंततः जीवन का उपव्यय सिद्ध होता है।
ध्यान रख कि स्वयं को जाना तो सब जाना और स्वयं को पाया तो सब पाया।
फिर साधना का अवसर अत्यंत दुर्लभ भी है।
मनुष्य होना ही कितनी लंबी यात्रा के बाद संभव हो सकता है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971

(प्रतिः मा धर्म समाधि, बंबई)

101 / अवसर बार-बार नहीं आते

मेरे प्रिय,
प्रेम।
मन है संन्यास का तो डूबो।
फिर स्थगन ठीक नहीं। प्र
भु जब पुकारे तो चल पड़ो।
फिर रुकना ठीक नहीं।
क्योंकि, अवसर द्वार पर बार-बार आए कि न आए।

रजनीश के प्रणाम 12-1- 1972
(प्रतिः श्री शिव, जबलपुर म. प्र.)

102 / समय के पूर्व शक्ति का जागरण हानिप्रद

प्यारी समाधि,
प्रेम।
तृतीय नेत्र (जीपतक म्लम) की चिंता में तू न पड़।
आवश्यक होगा तो मैं तुझसे उस दिशा में कार्य करने को कहूंगा।
वह तेरी संभावना के भीतर है और बिना ज्यादा श्रम के ही सक्रिय भी हो सकता है।
लेकिन, तू स्वयं उत्सुकता न ले।
फिर सत्य के साक्षात्कार के लिए वह आवश्यक भी नहीं है।
और अनिवार्य तो बिल्कुल ही नहीं।
और मूल-साधना से भटकाव भी।
कभी-कभी कुछ शक्तियां अनचाहे भी सक्रिय हो जाती है;
लेकिन उनके प्रति भी उपेक्षा आवश्यक है।
और नए सोपान पर गतिमय होने में सहयोगी भी।
अब जब मैं तेरी चिंता करता हूं
तो तू सब चिंताओं से सहज ही विश्राम ले सकती है।

रजनीश के प्रणाम 23-1-1971

(प्रतिः मा योग समाधि, राजकोट, गुजरात)

103 / मन ही अशांति है

प्रिय विमला,
प्रेम।
मन के रहते शांति कहां?
क्योंकि, वस्तुतः मन ही अशांति है।

इसलिए शांति की दिशा में मात्र विचार से, अध्ययन से, मनन से कुछ भी न होगा।
विपरीत मन और सबल भी हो सकता है; क्योंकि वे सब मन की ही क्रियाएं हैं।
हां- थोड़ी देर विराम जरूर मिल सकता है;
जो कि शांति नहीं, बस अशांति का विस्मरण मात्र है।
इस विस्मरण की मादकता से सावधान रहना। शां
ति चाहिए तो मन को खोना पड़ेगा।
मन की अनुपस्थिति ही शांति है।
साक्षीभाव (ूपजदमेपदह) से यही होगा।
विचार, कर्म- सभी क्रियाओं की साक्षी बनो।
कर्त्ता न रहो। साक्षी बनो। पल-पल साक्षी होकर जियो।
जो भी करो- साक्षी रहो- जैसे कि कोई और कह रहा है और मात्र गवाह हो।
फिर धीरे-धीरे मन भोजन न पाने से निर्बल होता जाता है।
कर्त्ता-भाव मन को भोजन है। अहंकार मन का ईंधन (थ्नमस) है।
और जिस दिन ईंधन बिल्कुल नहीं मिलता है, उसी दिन मन ऐसे तिरोहित हो जाता है
कि जैसे कभी रहा ही न हो।

रजनीश के प्रणाम।
23-1-1971
(प्रतिः सुश्री विमला सिंहल, नीमच, म. प्र.)

104 / निकट में डूब, स्वयं में खोज

प्यारी अरुण,
प्रेम।
निकट ही है साम्राज्य।
लेकिन, अपनी ही भूल से हम भिखारी हैं।
क्योंकि, हम देखते हैं दूर। लालच सदा ही दूर देखता है।
लोभ दूर देखता है। काम दूर देखता है।
वासना मात्र दूरी पर जीती है।
और साम्राज्य है निकट। निकट से भी निकट।
खजाने हैं भीतर- स्वयं में ही।
लेकिन, कामना का भिक्षापात्र दूर के लिए ही लालायित रहता है।
इसलिए जिसने दृष्टि दूर से हटायी, वही सम्राट हो जाता है।
जिसने देखा निकट- जिसने देखा स्वयं में वह; वह सभी कुछ पा लेता है जो
कि पाने योग्य है।
तू दूर से सावधान रहना।
निकट में डूब। स्वयं में खोज।
तेरे लिए- और तेरे ही लिए क्यों, सबके ही लिए- यही साधना है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971
(प्रतिः सुश्री अरुण, द्वारा श्री सरदारीलाल शर्मा, 54, 6, 2, प्रतापगली बाजार, अमृतसर, पंजाब)

105 / अर्थवत्ता का द्वार

प्यारी बकुल,
प्रेम।
ऐसा ही है जीवन- कथा किसी मूर्ख द्वारा कही हुई।
शोरगुल बहुत। अर्थ कुछ भी नहीं।
पर जो उसे जान लेता है; उसके लिए वह अर्थहीन भी नहीं रह जाता है।

अर्थहीनता की पीड़ा भी अर्थ की आकांक्षा का ही प्रतिफल है।
अर्थ की अभीप्सा नहीं, तो अर्थहीनता (उमंदपदहसमेदमे) का विषाद भी नहीं।
और मजा तो यह है कि जहां अर्थहीनता नहीं है, अर्थहीनता का विषाद नहीं है,
वहीं और केवल वहीं अर्थ (उमंदपदह) का- अर्थवत्ता का द्वार खुलता है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971

(प्रतिः सौ. बकुल, बंबई)

106 / अज्ञात - अतींद्रिय मार्ग से सहायता

मेरे प्रिय,
प्रेम।
सौभाग्यशाली हो कि प्रभु द्वारा पुकारे गए हो।
स्वयं को उसी के हाथों में समर्पित कर दो।
उसकी मर्जी को ही अपना जीवन बना लो।
समर्पण ही साधना है।
समर्पण-भाव के साथ ध्यान अपने आप ही गहराएगा।
चिंता और दुविधा भी मिटेगी।
स्वयं ही न रहोगे तो चिंता कहां रहेगी?
अहंकार की छाया के अतिरिक्त दुविधा को अवकाश कहां है?
ध्यान की दिशा में श्रम करो।
अज्ञात - अतींद्रिय मार्ग से मैं सहायता करूंगा।
ध्यान के क्षण में मैं तुम्हारे निकट उपस्थित हो जाऊंगा।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971

(प्रतिः श्री त्रिलोचन त्रिपाठी, सतना, म. प्र.)

107 / पीड़ा - बीज के अंकुरित होने की

प्रिय नारायण,
प्रेम।
जानता हूं तुम्हारी प्यास।
जानता हूं तुम्हारी पीड़ा।
लेकिन, यह तो तुम स्वयं भी जानते हो।
मैं तुम्हारी वास्तविकता को ही नहीं, तुम्हारी संभावना को भी जानता हूं।
प्यास है; क्योंकि तृप्ति संभव है। पीड़ा है; क्योंकि आनंद संभव है।
सब प्यास जो हो सकता है, उसके लिए है।
सब पीड़ा बीज के अंकुरित होने की अभीप्सा है।
इसलिए; प्यास पर रुकना नहीं है। प्यास प्रारंभ है। उससे आगे बढ़ना है।
उससे ही शक्ति लेकर आगे बढ़ना है। पीड़ा को अंत नहीं बनाना है।
वह केवल मार्ग का कष्ट है। प्रसव की प्रक्रिया है।
उस पर नहीं - ध्यान रखना है सदा मंजिल पर - नए जन्म पर।
और पीड़ा की शक्ति को भी ध्यान के इस प्रवाह में रूपांतरित करना है।
पीड़ा अपने में वर्तुलाकार हो तो नर्क बन जाती है।
और पीड़ा ही स्वर्ग भी बन जाती है यदि वह कहीं पहुंचाती है।

प्यास का अतिक्रमण करो- सरोवर की खोज में।
पीड़ा का अतिक्रमण करा- आनंद के अन्वेषण में।
और फिर प्यास वरदान है। और पीड़ा आशीष है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971

(प्रतिः श्री नारायण, अब स्वामी अक्षय सरस्वती, जबलपुर, म. प्र.)

108 / अब व्यर्थ की बातों में न पड़

प्रिय मंजु,
प्रेम।
आश्वासन देता हूं कि जिसे जन्म-जन्म से तूने खोजा है; उसकी खोज इस जन्म में पूरी हो जाएगी।
सरिता सागर के निकट ही पहुंच गयी है, ऐसा देख रहा हूं; इसलिए ही आश्वासन दे सकता हूं।
बस एक मोड़ और।
और सागर तेरे सामने होगा। इ
सलिए, अब व्यर्थ की बातों में मत पड़।
व्यर्थ की अर्थात बौद्धिक (पदजमससमबजनंस)

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971

(प्रतिः सुश्री मंजु शाह, घटकोपर, बंबई-86)

109 / सत्य और स्वप्न भी दो नहीं हैं

प्यारी सावित्री,
प्रेम।
मैं तुझे स्वप्न में दिखाई पड़ता हूं, वह भी सत्य है।
क्योंकि, जो मैं तुझे सत्य में दिखाई पड़ता हूं, वह भी स्वप्न है।
सत्य और स्वप्न भी दो नहीं हैं।
क्योंकि, अस्तित्व अद्वैत है।
ब्रह्म और माया भी दो नहीं है।
इस एक पर ध्यान रख। दो से भर सावधान रह।
जरा सा भेद और पृथ्वी आकाश का भेद पड़ जाता है।
इंचभर दूरी और स्वर्ग और नर्क का फासला हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
23-1-1971
(प्रतिः डॉ. सावित्री पटेल, पोस्ट किल्ला पारडी, बलसार)

110 / ध्यान पर अथक श्रम- फलाकांक्षा-रहित

मेरे प्रिय,
प्रेम।
आता हूं तुम्हारे स्वप्न में भी।
और तभी तो तुम्हारा जागरण भी एक स्वप्न ही है!
तोड़नी है तुम्हारी निद्रा।
इसलिए, सब दिशाओं से तुम्हें पुकारता हूं।
उन दिशाओं में स्वप्न की दिशा भी एक दिशा है।

और आनंदित हूं कि तुम सुन भी पा रहे हो और समझ भी शीघ्र ही बहुत कुछ होगा।
कुंडलिनी भी जगेगी। और तुम भी जगोगे।
लक्षण शुभ हैं। और सुबह करीब है।
ध्यान पर श्रम करो- अथक और फलाकांक्षा-रहित।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः श्री दाताराम रामलाल, 363, कत्था बाजार, बंबई-9)

111 / बुद्धि में मत उलझ--तू तो सीधे ध्यान में जा

प्यारी जयश्री,
प्रेम। तू कब से उलझी?
उलझने दे पुष्कर को।
पर तू क्यों व्यर्थ के प्रश्नों में पड़ती है?
तू तो सीधे ही ध्यान में जा।
तुझे जो आवश्यक नहीं है, उसे व्यर्थ ही सिर पर मत ढो।
मैं तुझे जैसा जानता हूं, उससे कहता हूं कि तुझे स्वयं के द्वार में प्रवेश के पूर्व अन्यों के द्वारों को खटखटाने की आवश्यकता है।
लेकिन, पुष्कर को शायद थोड़ा भटकना है।
भटकना ही पड़े।
पुरुष की प्रकृति का ही वह अंग है।
उसे भटकने दे--उसके लिए वह हितकर है।
स्वास्थ्यप्रद भी।
वह भी लौटेगा--लेकिन सीधे नहीं--भटक कर ही।
पर तुझे पत्नी होने के कारण इस भटकाव में छाया बनने की जरूरत नहीं है।
फिर ऐसा किसी शास्त्र में भी नहीं लिखा है!

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः जयश्री गौकाणी, द्वारका, गुजरात)

112 / जीवन उलझन नहीं--मनुष्य ही उलटा है

मेरे प्रिय,
प्रेम। उलझनें खुलीं कब?
खुलेंगी भी कभी नहीं?
दर्शनशास्त्र का पूरा इतिहास सिवाय असफलता के और क्या है?
क्योंकि, उलझने हैं नहीं, सिर्फ मनुष्य उलटा है, इसलिए उलझनें दिखाई पड़ती हैं।
जैसे कोई शीर्षासन में खड़ा हो और फिर सारी दुनिया उलटी दिखाई पड़े!
बस, ऐसे ही उलझने हैं, ऐसे ही सवाल हैं।
इसलिए मैं उनके उत्तर नहीं देता हूं।
सिर्फ तुम्हें तुम्हारे शीर्षासन से उतारने की कोशिश करता हूं।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः पुष्कर गौकाणी , द्वारका , गुजरात)

113 / साक्षी में ही समाधान है

प्रिय जया ,
प्रेम। जीवन को व्यर्थ ही समस्या क्यों बनाती है ?
जीवन अपने में समस्या (ढतवइसमउ) नहीं है।
न ही अपने में समाधान ही है।
उसका समस्या या समाधान होना सदा ही जीने वाले पर निर्भर है।
अर्थात तुझ पर।
न कुछ पकड़, न कुछ छोड़।
कर्त्ता न बन।
कर्ता बनी कि जीवन समस्या बना।
साक्षी बन।
क्योंकि , साक्षी में ही समाधान है।

रजनीश के प्रणाम
24-171971

(प्रतिः सुश्री जयंती महेश्वरी , घाटकोपर , बंबई -77)

114 / जगाए रखो संकल्प को

मेरे प्रिय ,
प्रेम। खोजो प्रभु को।
और तक तक विश्राम नहीं।
जगाए रखो संकल्प को जैसे कि सर्द रात्रि में कोई अग्नि को जलाए।
भोर होने तक : सूर्योदय होने तक।
अंधेरी है रात्रि।
निराशा जैसी।
पर संकल्प (पसस) है पास तो आशा की अग्नि ही है। और जानो भलीभांति कि सुबह दूर नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
24-1971
(प्रतिः बी . एल. नाग , स्टोर्स ऑफिसर , कलेक्टर ऑफ इंसपेक्शन (ह्वन), जबलपुर)

115 / ध्यान से प्रश्नों की निर्जरा

प्यारे चीनु ,
प्रेम। उत्तर तो तुझे सब मालूम है।
फिर भी प्रश्न तो मिटते नहीं।
और जिन उत्तरों से प्रश्न न मिटें , वे उत्तर किस काम के हैं ? असल में वे उत्तर ही नहीं हैं।
सच तो यह है कि प्रश्नों के रहते उत्तर मिलते ही नहीं हैं। प्रश्नों से मुक्ति ही अंततः उत्तर है।
इसलिए, ध्यान में डूबो और प्रश्नों को गिराओ।

ध्यान में प्रश्न ऐसे ही झड़ जाते हैं, जैसे कि पतझड़ में पत्ते।
और जहां प्रश्न नहीं हैं, वहीं उत्तर है।
यह भी स्मरण रखना कि जितने प्रश्न हैं, उतने उत्तर नहीं है।
प्रश्न अनंत हैं।
उत्तर एक ही है।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः श्री चीनु बी. शाह, 999 बाघेश्वर की पोल, रायपुर, अहमदाबाद -1 गुजरात)

116 / संन्यास में छलांग

प्यारी सावित्री,
प्रेम। कब तक करेगी बाहर भीतर का भेद?
शरीर और आत्मा का?
पदार्थ और परमात्मा का?
काफी किया--अब छोड़।
संन्यास न है बाहर से, न भीतर से।
संन्यास बाहर-भीतर का अभेद है।
और इसलिए कहीं से प्रारंभ कर--अंत सदा एक है।
असली बात है कि प्रारंभ कर और स्थगन न कर।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः डाक्टर सावित्री पटेल, पोस्ट किल्ला पारडी, जि. बलसार, गुजरात)

117 / याचना प्रार्थना की हत्या है

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रभु के द्वार पर याचक की भांति कभी मत जाना।
वहां कुछ मांगना ही मत।
मांग--याचना प्रार्थना की हत्या है।
भिक्षापात्र सदा ही वही छोड़ देना--मंदिर के बाहर, जहां कि जूते छोड़े जाते हैं।
और तब बहुत मिलता है--तब ही मिलता है।
मांगे जो कभी नहीं मिलता--बिना मांगे वह सदा ही मिल जाता है।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः श्री केदार सिंहल, नीमच म. प्र.)

118 / संतुलन : विचार और भाव में, तर्क और श्रद्धा में

प्रिय सतीश,

प्रेम। पश्चिम हो गया है एक दुखस्वप्न (छपहीजउंतम), यह होना ही था।
जीवन के नियम न अपवाद को मानते हैं; और न ही किसी को क्षमा करते हैं।
अतियां आत्मघाती (एनपबपकंस) हैं--सदा-सदैव।
पश्चिम में जो हो रहा है, वह बुद्धि पर अतिविश्वास का सहज परिणाम है।
अति-विश्वास यानी अंधविश्वास।
पूर्व ने भी की थी एक अति--भाव की, हृदय की।
फिर मोणा परिणाम।
अब पश्चिम ठीक दूसरे ध्रुव (ढवसंतपजल) पर वही भूल कर बैठा है।
अरस्तू (ःतपेजवजसम) काफी नहीं है।
कृष्ण भी अनिवार्य हैं।
विज्ञान काफी नहीं है--धर्म भी अनिवार्य है।
जीवन है एक बारीक संतुलन और नाजुक भी।
विचार में--भाव में।
तर्क में--श्रद्धा में।
गणित में--काव्य में।
अर्थात, विरोधी ध्रुवों में।
और जहां भी खोया यह अंर्तसंगीत (भवतउवदल), वहीं जीवन संताप (ःदहनपे) है।
मिशेल को बहुत प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
24-1-1971

(प्रतिः श्री सतीश पंचाल, एफ-141, एल-हरमिटेज बाउलेह्व जे. केनेडी, (एनक) फ्रांस)

119 / ध्यान की गहराई के साथ ही संन्यास-चेतना का आगमन

मेरे प्रिय,
प्रेम। बहुमूल्य है तुम्हारा अनुभव।
जो चाहते थे, वही हुआ है।
द्वार खुला है--जन्मों-जन्मों से बंद पड़ा द्वार।
इसलिए पीड़ा स्वाभाविक है।
नया जन्म हुआ है तुम्हारा
इसलिए, प्रसव से गुजरना पड़ा है।
भय जरा भी मन में न लाना।
भय हो तो मेरा स्मरण करना।
स्मरण के साथ ही भय तिरोहित हो जाएगा।
मेरी आंखों सदा ही तुम्हारी ओर हैं।
जो भी सहायता आवश्यक होगी, वह तत्काल पहुंच जाएगी।
आनंद भी बाढ़ भी भांति आ गया है।
उससे भी न घबड़ाना।
जब भी आनंद बढ़े तभी बस प्रभु को धन्यवाद देना और शांत रहना।
जब संन्यास का भाव बढ़ेगा।
उससे भी चिंतित मत होना।
अब तो संन्यास स्वयं ही आ जाएगा।
आ ही रहा है।
बादल तो घिर ही गए हैं।
बस, अब वर्षा होने को ही है।
और हृदय की धरती तो सदा से ही प्यासी है।

रजनीश के प्रणाम

25-1-1971

(प्रतिः श्री सेवंतीलाल, सी. शाह, अहमदाबाद, गुजरात)

120 / गहरे ध्यान के बाद ही जाति-स्मरण का प्रयोग

मेरे प्रिय,
प्रेम। विगत जन्म की स्मृति में उतर सकते हो।
लेकिन, उसके पूर्व गहरे ध्यान (क्ममच ऊमकपजंजपवद) का प्रयोग अति आवश्यक है।
उसके बिना पीछे लौटाना चेतना को अत्यंत कठिन है और यदि किसी भांति संभव भी हो तो खतरनाक भी।
इसलिए, गहरे ध्यान के पूर्व मैं कोई सुझाव नहीं दे सकता हूं।
इसे कठोरता मत समझ लेना।
ऐसा मैं करुणावश ही लिख रहा हूं।
साधारण चित्त अतीत जन्म की स्मृतियों की बाढ़ को झेलने में समर्थ नहीं है।
और पूर्ण तैयारी के बिना प्रकृति के नियमों के से खेल महंगा सिद्ध होता है।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री इंद्रजीत शंगारी, रानी बाजार, बीकानेर, राजस्थान)

121 / उसके लिए द्वार खुला छोड़ दो स्वयं का

मेरे प्रिय,
प्रेम। कुछ भी न करो।
बस प्रतीक्षा के अतिरिक्त।
जैसे कि बीज भूगर्भ में प्रतीक्षा करता है।
प्रतीक्षा ही प्रार्थना है तुम्हारे लिए।
प्रतीक्षा ही साधना है।
अज्ञात में श्रद्धा की घोषणा है प्रतीक्षा (:ूंपजपदह) उसके ही हाथ जो आवृत्त है उसे अनावृत्त करेंगे।
उसके ही हाथ जो अव्यक्त है उसे व्यक्त करेंगे।
लेकिन उसे मौका दो।
बाधा भर न बनना उसके मार्ग में।
उसके लिए द्वार खुला छोड़ दो स्वयं का।
वह मिटाए तो मिटना।
क्योंकि, यही उसके बनाने का ढंग है।
वह तोड़ेगा, ताकि बीज अंकुर बने।
वह तुम जो हो, उसे मिटाओ, ताकि तुम वह हो सको जो कि तुम हो सकते हो।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री प्रबोध खन्ना, द्वारा-सुश्री सोनी बत्रा, 101, काकोरी कालोनी, बरसोवा रोड, अंधेरी बंबई-58)

122 / मौन के तारों से भर उठेगा हृदयाकाश

मेरे प्रिय,

प्रेम। जब पहले-पहले चेतना पर मौन का अवतरण होता है, तो संध्या की भांति सब फीका-फीका और दास हो जाता है--जैसे सूर्य ढल गया हो और रात्रि का अंधेरा धीरे-धीरे उतरता हो और आकाश थका-थका हो दिन भर के श्रम से।

लेकिन, फिर आहिस्ता-आहिस्ता तारे उगने लगते हैं और रात्रि के सौंदर्य का जन्म होता है।

ऐसा ही होता है मौन में भी।

विचार जाते हैं, तो उनके साथ ही एक दुनिया अस्त हो जाती है।

फिर मौन आता है, तो उसके पीछे ही एक नई दुनिया का उदय भी होता है।

इसलिए, जल्दी न करना।

घबड़ाना भी मत।

धैर्य न खोना।

जल्दी ही मौन के तारों से हृदयाकाश भर उठेगा।

प्रतीक्षा करो और प्रार्थना करो।

रजनीश के प्रणाम
25-171971

(प्रतिः श्री अरुण जे. पटेल, प्रागजी वंद्रावन बिल्डिंग, जमालगली, बोरिवली, बंबई-92)

123 / बहुत देर हो चुकी है--आ जाएं अब

मेरे प्रिय,

प्रेम। बीज की भांति संभाला है जिस सदा हृदय में, अब उसे बोने का समय आ गया है।

ऋतु अनुकूल है और आकाश के देवता अनुग्रह करने को आतुर हैं।

फिर अवसर आना भी जानते हैं और जाना भी।

वे आते हैं और न पकड़े जाएं तो सहज ही खो भी जाते हैं।

फिर वे पुनः इस मार्ग से लौटेंगे इसका भी भरोसा कहां है?

और वे लौटे भी तो हम होंगे यह कौन कहे?

वैसे पुनरुक्त कुछ भी नहीं होता है।

इतिहास कभी भी नहीं दोहराता है।

इसीलिए, तो भविष्य सदा अज्ञेय है।

इसीलिए तो अपरिभाष्य है घटनाएं।

और अव्याख्य है जीवन।

आ जाएं अब।

ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री पी. एफ. शाह, 1, वुडलेंड स्ट्रीट, स्टाकटन-आनटीज, टी साइड इंग्लैंड)

124 / आज ही तुम्हारा जीवन है

मेरे प्रिय,

प्रेम। संसार ऐसे ही चलता रहा है--चलता रहेगा।
कल भी ऐसा ही था था और कल भी ऐसा ही होगा।
लेकिन, कल तुम नहीं थे--और कल तुम नहीं होओगे।
इसलिए, आज ही तुम्हारा जीवन है।
इसे आज ही जीओ--गहराई में और समग्रता में।
और स्वयं से पलायन के लिए संसार की चिंता में न पड़ो।
स्वयं को जान सको तो काफी से ज्यादा है।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री माधव, जबलपुर, म. प्र.)

125 / मध्य में संभालना स्वयं को

प्रिय मंजु,
प्रेम। मुक्ति के लिए सिवाय अहंकार के और कोई बाधा नहीं है।
यदि, गुरु से यह अहंकार भरता हो तो गुरु भी बाधा है।
लेकिन, गुरु नहीं से भी यह अहंकार भर सकता है।
अहंकार के मार्ग अति-सूक्ष्म हैं!
शास्त्र से, आप्त-प्रमाण (ःनजीवजपजल) से अहंकार पोषित होता है तो उनसे बचना।
लेकिन, आप्त-प्रमाण नहीं (छव-ःनजीवतपजल) से भी अहंकार वही कार्य ले सकता है, ले लेता है।
इस और कुआं-उस ओर खाई।
ऐसा ही मार्ग।
मध्य में संभालना स्वयं को।
मज्झिम निकाय (ऊपककसमूंल) का सदा स्मरण रखना।
मेहेर बाबा और कृष्णमूर्ति दोनों के माध्य है मार्ग।
अतीत में खतरा मेहेर बाबा जैसे व्यक्ति से था! भविष्य में खतरा कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति से है! और खतरा एक ही, अहंकार का।
खतरा मेहेर बाबा या कृष्णमूर्ति में नहीं है।
खतरा है मत की चालबाजियों में।
मत एक अति से सदा ही दूसरी अति पर चला जाता है।
अन-अति मन की मृत्यु है।
और मध्य अनअति है।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रति; सुश्री मंजु शाह, ब व डॉ. एस. बी. शाह, घाटकोपर, बंबई-86)

126 / अदृश्य और अज्ञात में छलांग

मेरे प्रिय, समदर्शी,
प्रेम। खींचा है, इसीलिए तो खिंचे हो।
पुकारा है इसीलिए तो आना चाहते हो।
बेचैन अकारण नहीं हो।

अकारण तो कुछ भी नहीं है।
नहीं दिखाई पड़ते ऐसे भी कारण हैं।
नहीं दिखाई पड़ते ऐसे भी आकर्षण हैं।
और अब उन्हीं की ओर तुम्हारी यात्रा का प्रारंभ है।
अज्ञात में कूदने के लिए तैयार हो जाओ।
न तो उस पार का कोई नक्शा ही है और न ही गंतव्य के संबंध में कोई भविष्यवाणी ही संभव है।
लेकिन ज्ञात (ज्ञदवूद) में आनंद कहां?
क्योंकि ज्ञात में चुनौती (ींंससमदह) नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री ब्रह्मचारी समदर्शी, मरेठ उ. प्र.)

127 / अहंकार की सूक्ष्म लीला को पहचाना

मेरे प्रिय,
प्रेम। सूक्ष्म हैं मार्ग अहंकार के।
और फिर वह बुरूपियां भी है।
विनम्रता के वस्त्रों में भी वह उपस्थित हो जाता है।
समर्पण की आड़ में तक वह अपने को बचाता है।
प्रार्थना में झुके हुए सिर के पीछे भी वह अहंकार कर खड़ा रहता है।
सेवा में भी वह मालकियत करता है।
पैर दबाते हुए भी वह गर्दन पर कब्जा रखता है।
प्रेम में भी वह स्वामित्व (ढवेमेपवद) बन जाता है।
और प्रार्थना में भी।
अहंकार की इस सूक्ष्म लीला को पहचाना-उसके सब रूपों में।
क्योंकि अहंकार की पहचान ही उसकी मृत्यु है।
अहंकार का अज्ञान अहंकार का जीवन है।
अहंकार का ज्ञान अहंकार की मृत्यु।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री केदार सिंहल, नीमच, म. प्र.)

128 / गंभीरता का रोग और जीवन का हल्कापन

मेरे प्रिय,
प्रेम। गंभीरता से न लो जीवन को।
अभिनय जानो।
हलके-फुलके मन से जीओ।
और साक्षीभाव रखो।
नाटक है बड़ा और मच है विराट।
उसमें हम भी हैं पात्र छोटे से।
अकिंचन--ना-कुछ।
फिर थोड़ी ही देर में पर्दा गिरेगा।
मृत्यु पात्रों को मंच से वापस बुला लेगी।
कहा-सुना सब होगा शून्य।

किया-धरा सब होगा राख।
इसे अभी ही स्मरण रखो न?
मृत्यु को स्मरण रखो तो जीवन गंभीर नहीं रह जाता है।
गंभीरता रोग है।
और, जब जीवन गंभीर नहीं, बोझिल नहीं, भारी नहीं, तभी जीवन, जीवन है।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री श्याम दुर्गे, ब द्ध श्री एस. एन. कस्तुरे, जी. पी. ओ., अकोला, महाराष्ट्र)

129 / विचार किया बहुत--अब ध्यान करें

मेरे प्रिय,
प्रेम। निश्चय ही जीवन तथाकथित दैनंदिन जीवन से कुछ ज्यादा है।
ज्यादा भी और भिन्न भी।
भिन्न भी और अन्य भी।
उसकी प्यास जगी तो शुभ है।
उसकी अभीप्सा स्वभावतः बेचैन भी करेगी।
लेकिन, बेचैनी के बिना चैन की उपलब्धि नहीं है।
राह का श्रम ही तो मंजिल तक पहुंचाता है।
चाह की पीड़ा ही तो गति है।
और गति के बिना अंतव्य कहां?
इसलिए, इस बेचैनी के लिए प्रभु को धन्यवाद दें।
और सिर्फ बेचैन न हों, अब खोज के लिए कुछ करें भी।
विचार किया बहुत।
अब ध्यान करें।
अर्थात--निर्विचार में चलें।
निस्तरंग चित्त में।
या अ-चित्त (छव-उपदक) में।
विचार के धुएं को हटाएं और खोजें स्वयं की धूम्रहीन अंतर्ज्योति को।

रजनीश के प्रणाम
26-1-1971

(प्रतिः डाक्पर रमेश व्यास, 9-2, नार्थ हरसिद्धि, इंदौर-2, म. प्र.)

130 / उद्देश्य नहीं-खोजो जीवन को ही

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीवन का उद्देश्य न खोजो तो अच्छा।
वह खोज उस भांति असंभव है।
उसमें सीधे ही पड़ने से सिवाय भटकन के और कुछ भी हाथ नहीं लगता है।
खोजना ही है तो खोजो जीवन को ही।
क्यों नहीं--क्या को बनाओ प्रस्थान-बिंदु।
और फिर क्यों भी जान लिया जाता है।
उद्देश्य भी होता है ज्ञात, लेकिन वह परोस लिया जाता है।
उद्देश्य भी होता है ज्ञात, लेकिन वह परोक्ष परिणाम है।

रजनीश के प्रणाम
26-1-1971

(प्रतिः श्री माधव, रमेश जनरल स्टोर्स, गंजीपुरा रोड, जबलपुर, म. प्र.)

131 / खूंटिया उखाड़ें: जंजीरें छोड़ें

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रभु के आशीर्वाद प्रतिपल बरस रहे हैं।
आंखें खोलें और देखें।
हृदय खोलें और ग्रहण करें।
उसके द्वारा कंजूसी नहीं है।
पर हम ही कृपण हैं।
वह देने में कृपण नहीं, लेकिन हम लेने में भी कृपण हैं।
सूर्य द्वार-दरवाजे बंद कर अपने ही द्वारा निर्मित अंधेरे में डूबे हैं।
उसकी हवाएं हमारी नाव को आनंद तट पर ले जाने का आतुर हैं; लेकिन हम नावों को जंजीरों से बांधें बैठे हैं।
खूंटियां उखाड़ें--जंजीरें छोड़ें।
और देखे कि वह सदा से ही नाव को वहीं ले जाना चाहता रहा है जो कि हमारी जन्मों-जन्मों की कामना है।

रजनीश के प्रणाम
26-1-1971

(प्रतिः श्री कांतिलाल टी. सेठिया, पुरलिया रोड, पो. चास, धनबाद, बिहार)

132 / स्वयं का रूपांतरण ही तपश्चर्या है

प्रिय आनंद मूर्ति,
प्रेम। मैं पीछा करूंगा ही।
मेरी आंखें तुम्हारे पीछे छाया की भांति ही लगी रहेंगी।
तब तक जब तक कि तुम्हारी स्वयं की आंखें नहीं खुल जाती हैं।
वह सौभाग्य क्षण दूर तो नहीं--निकट ही है और फिर भी कठिन है, वैसे ही जैसे पर्वतीय शिखर देखने पर निकट और चढ़ने पर बहुत दूर मालूम होने लगते हैं।
दूरी स्थान में नहीं--चढ़ाई में है।
कठिनाई तल-परिवर्तन की है।
वस्तुतः घाटियों से असत्य की जो यात्रा आरंभ करता है वही सत्य के शिखर तक कभी नहीं पहुंचते है।
वह तो मार्ग में खो जाता है, गिर जाता है।
वह तो मार्ग में ही निर्जरा को उपलब्ध हो जाता है।
इसलिए, चलता है कोई और--और पहुंचता है कोई और।
स्वयं के इस अतिक्रमण में ही कठिनाई है।
यही तप है--यह रूपांतरण (ैंतंदेवितउंजपवद) ही तपश्चर्या है।

रजनीश के प्रणाम
26-1-1972

(प्रतिः स्वामी आनंदमूर्ति, मांडवी की पोल, अहमदाबाद-1)

133 / चाहिए पागल प्रेम --सरल श्रद्धा और समग्र स्वीकृति

मेरे प्रिय ,
प्रेम। उद्देश्य की भाषा प्रभु के लिए लागू नहीं है।
लक्ष्य की दिशा पूर्ण के लिए असंगत है।
अंश के लिए जो सार्थक है , वही अंशी के लिए सार्थक नहीं है।
इसलिए प्रभु ने किस अद्देश्य से जगत बनाया , इस व्यर्थ के ऊहापोह में न पड़े।
उससे अंततः कुछ भी निष्पत्ति नहीं है।
अच्छा हो कि स्वयं को खोजें।
स्वयं को जानें।
स्वयं को जीतें।
और शायद फिर किसी दिन स्वयं के साक्षात्कार के क्षण में निरुद्देश्य --उलक्ष्य प्रभु -लीला के रहस्य की झलक मिल सके।
ध्यान रहेः मैं कहता हूं --रहस्य की झलक --आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं।
अस्तित्व समस्या (ढतवइसमउ) नहीं है --अस्तित्व रहस्य (ऊलेजतल) है।
इसलिए , प्रश्नोत्तर का विद्यालय ढंग कहां काम नहीं करता है --
वहां तो चाहिए प्रेमियों जैसा पागल प्रेम या बच्चों जैसी सरल श्रद्धा या संतों जैसी समग्र स्वीकृति।

रजनीश के प्रणाम
26-171971

(प्रतिः श्री बहादुरसिंह मारु , 306 सी राजेंद्रनगर , इंदौर , म. प्र .)

134 / स्वयं से मिलने के पहले बहुत कुछ आएगा और जाएगा

मेरे प्रिय ,
प्रेम। ध्यान की गति से प्रसन्न हूं।
अब व्यवधान न पड़ने देना।
नियमित श्रम करते रहें।
शीघ्र ही खजाने हाथ पड़ेंगे।
भय का कोई भी कारण नहीं है।
जो भी हो रहा है वह शुभ है।
संकेतों के भी साक्षी रहें --उनके संबंध में सोच -विचार न करें।
बहुत हो तो लिख दें और भूल जावें।
बहुत कुछ आएगा और जाएगा --इसके पहले कि स्वयं से मिलना हो।
पर गाड़ी मार्ग पर और मंजिल भी दूर नहीं है।
मेरी शुभकामनाएं।

रजनीश के प्रणाम
25-1-1971

(प्रतिः श्री मदनलाला चौधरी , द्वारा -एच. एन. 214, 3-8, जलियांवाला बाजार , धोबियान , अमृतसर , पंजाब)

135 / रत्ती भर अहंकार --और सब बेकार

मेरे प्रिय,
प्रेम। अहंकार की जरा सी बदली भी चांद को ढंक लेती है।
अहंकार का जरा सा तिनका भी आंख में पड़ा हो तो हिमालय भी दिखाई पड़ना बंद हो जाता है।
इसलिए, प्रार्थना ही करनी हो तो रत्ती भर अहंकार को बचाने की भी चेष्टा मत करना--इसलिए भी; क्योंकि अहंकार विभाजित नहीं होता है। और रत्ती भर के नाम पर पूरा ही बच जाता है।

रजनीश के प्रणाम
26-1-1971

(प्रतिः श्री केदार सिंहल, नीमच, म. प्र.)

136 / धैर्य और साक्षीत्व--साधक के पाथेय

प्यारी समाधि,
प्रेम। शरीर-चक्रों पर कार्य शुरू हुआ है।
अनायास और अकारण ही किसी चक्र पर पीड़ा होने लगेगी।
उससे न भयभीत होना और न ही उसकी चिकित्सा में पड़ना। उसके प्रति साक्षी भाव रख कर ध्यान जारी रखना।
जब भी ऐसी पीड़ा हो तो पीड़ा के कारण ध्यान स्थगित नहीं करना।
पीड़ा कार्य है, वह होते ही, वह जैसे ही आई थी वैसे ही विदा हो जाएगी।
चक्र पड़े हैं बंद वर्षों से: जन्मों से।
उनमें पुनः सक्रियता के कारण ही पीड़ा होती है।
कानों में कभी गर्म वायु निकलेगी।
रीढ़ में कभी कोई सर्प जैसी शक्ति सरकेगी।
शरीर में अपरिचित कंपन होंगे।
भीड़ मग भी सन्नाटे की आवाज सुनाई पड़ेगी।
नींद कभी अचानक टूट जाएगी और शरीरी भाव का अनुभव होगा।
ध्यान में नाद सुनाई पड़ेंगे।
जो भी हो उसे देखना--चिंता मग नहीं पड़ना।
मृत्यु भी आती मालूम हो तो उसे भी स्वीकार करना और साक्षी रहना।
क्योंकि, ध्यान में मृत्यु की अनुभूति ही अमृतत्व का द्वार है।

रजनीश के प्रणाम
27-1-1971

(प्रतिः मा योग समाधि, पंकज, 44 प्रह्लाद प्लाट, राजकोट, गुजरात)

137 / चेतना के प्रतिक्रमण का रहस्य-सूत्र

मेरे प्रिय,
प्रेम। अहंकार बाहर ही है।
भीतर तो सदा ही आलोक है।
ध्यान बहिर्गामी है तो रात्रि है।
ध्यान अंतर्गामी बने तो रात्रि दूर जाती है और सुबह का जन्म हो जाता है।
बाहर से हटाएं मन को।
मुड़ें भीतर की ओर।
शब्द से रहें: मौन हों।

विचार से विश्राम लें--शून्य हों।
बाह्य को भूलें--और स्मरण करें उसका जो कि भीतर है।
जब भी समय मिले--चेतना की धारा को भीतर की ओर ले चलें।
सोते समय--सोने के पूर्व आंखें बंद करें और भीतर देखें।
जागते समय--ज्ञात हो कि नींद टूट गई है तो आंखें न खोलें--पहले देखें भीतर। और धीरे-धीरे चेतना के क्षितिज पर सूर्योदय हो जाएगा।
और जिसके भीतर प्रकाश है, फिर उसके बाहर भी अंधकार नहीं रह जाता है।

रजनीश के प्रणाम
27-1-1971

(प्रतिः श्री गोवर्धनलाल वर्मा, राणक ब्रदर्स, चंद्र बिल्डिंग, एवेन्यू रोड, बैंगलोर-2)

138 / ध्यान करें--चिंतन नहीं

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपकी साधना से प्रसन्न हूं।
इतना संकल्प हो तो कुछ भी असंभव नहीं है।
लेकिन, ध्यान रखें कि सोच-विचार में नहीं पड़ना है।
प्रयोग करें--विचार नहीं।
ध्यान करें--चिंतन नहीं।
चिंतन को फिलहाल छुट्टी दें।
इससे चिंतन को भी विश्राम मिलेगा और आपको भी।
जो ज्ञात नहीं उसके संबंध मग सोचने विचारने का उपाय नहीं है।
विचार तो ज्ञात की ही जुगाली है।
ध्यान है अज्ञात में छलांग।
अज्ञात में ही यात्रा करें।
लौट-लौट कर पीछे न देखें।
अनुभव के बिना कुछ भी न होगा।
और विचारणा अनुभव की परिपूर्वक (एनइेजपजनजम) नहीं है।
इसीलिए तो दर्शन (ढीपसवेवचील) धर्म नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
27-1-1971

(प्रतिः श्री मिश्रीलाल राजूलाल सकलेचा, सदर बाजार, धमतरी, म. प्र.)

139 / ध्यान--धर्म अर्थात मृत से अमृत की यात्रा

प्रिय पह्मा,
प्रेम। शरीर आज है, कल नहीं।
इसलिए जो सदा है उस पर ध्यान दो।
वही मंगल है, उसमें ही मंगल है।
शरीर का सीढ़ी की भांति उपयोग करो।
लेकिन, शरीर गंतव्य नहीं है।
शरीर में निवास करो--शरीर घर है।
लेकिन, शरीर ही मत जो जाओ--तुम शरीर नहीं हो।
शरीर अस्वस्थ भी होगा।
मरेगा भी।

71

लेकिन, शरीर के साथ तुम्हें अस्वस्थ होने की जरूरत नहीं है।
और जब शरीर के अस्वस्थ होने पर भी पाओ कि तुम स्वस्थ हो, उसी दिन तुम जानना कि स्वस्थ हो।
अन्यथा, शरीर की मृत्यु में तुम्हें स्वयं की मृत्यु की भांति होगी।
अनेक बार--अनंत बार इसी भांति में तो जन्मी और मरी हो।
अब छोड़ो इस भांति को।
अब तोड़ो इस अज्ञान को।
शरीर मरे और तुम जान सको कि तुम अमर हो, यही तो लक्ष्य है ध्यान का, धर्म का।
इस लक्ष्य को सदा स्मरण रखो।
बस, तुम इतना ही करो और शेष सब अपने आप हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
29-1-1971

(प्रतिः सुश्री पह्मा, बाबुभाई, इंजीनियर, 15-सरस्वती महाल, पौड फाटा, ऐरंडवणा, पूना: 4)

140 / व्यक्तित्व के आमूल रूपांतरण पर ही प्रेम घटित

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रेम बंधन नहीं है।
प्रेम ही पूर्ण स्वतंत्रता है।
लेकिन, जिस प्रेम को मनुष्य जानता है, वह प्रेम बंधन ही है।
और जब प्रेम बंधन होता है, तो घृणा से भी बदतर हो जाता है।
स्वर्ण की जंजीरें निश्चय ही लोहे की जंजीरों से ज्यादा खतरनाक हैं।
असल में, मनुष्य जैसा है वैसा ही वह प्रेम में समर्थ नहीं है।
उसके सब संबंध मलतः कम या ज्यादा अप्रेम के ही संबंध हैं।
उसके प्रेम और उसकी घृणा में गुणात्मक (रुनंसपजंजपअम) नहीं, बस परिमाणात्मक (रुनंदजपजंजपअम) ही अंतर है।
और इस अंतर में सिवाय धोखे के और कुछ भी नहीं है।
और धोखा भी स्वयं को ही।
वस्तुतः गहरे में, स्वयं को धोखा देकर ही हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं।
प्रेम की घटना (भंचचमदपदह) के पूर्व मनुष्य का आमूल रूपांतरण (ैंवजंस ऊनजंजपवद) अनिवार्य है।
यह रूपांतरण है अहंकार से निर-अहंकार की ओर।
अहं के साथ प्रेम का सह-अस्तित्व (ींव-मगपेजमदबम) असंभव है।
और अहं-अभाव में प्रेम का अनस्तित्व असंभव है।

रजनीश के प्रणाम
21-1-1971

(प्रतिः श्री केदार सिंहल, नीमच म. प्र)

141 / काम रसायनिक है--और प्रेम आध्यात्मिक

प्रिय भरत,
प्रेम। प्रेम को पहचाना कठिन है।
क्योंकि, पृथ्वी पर उससे अधिक सूक्ष्म और कुछ भी नहीं है।

सूक्ष्मता के कारण ही व स्वप्न भी मालूम पड़ता है।
पर ध्यान और सम्यक स्मृति (त्तपहीज ऊपदकनिससदमे) से उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों के आघात भी हृदय पर अनुभव होने लगते हैं।
निश्चय ही तुम समझ गए होगे कि मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, वह वही प्रेम नहीं है जिसकी लोग बात करते हैं।
काम (एमग) की संवेदनाओं को लोग प्रेम कहते हैं।
काम रासायनिक (ींमउपबंस) है।
प्रेम आध्यात्मिक।
काम जैविक (ईपवसवहपब्रंस) है।
प्रेम जीवन।
काम प्रेम का द्वार बन सकता है और यही उसकी सार्थकता है।
लेकिन प्रेम का परिपूरक भी बन सकता है और तब उससे ज्यादा खतरनाक और कुछ भी नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
7-3-1971

(प्रतिः प्रो. भरत जे. सेठ, डिपार्टमेंट ऑफ बाटेनी, अहमदनगर कालेज महमदनगर, महा.)

142 / अप्रेम के कांटे और प्रेम के फूल

प्रिय, बासंती,
प्रेम। प्रेम संबंध नहीं है।
वस्तुतः प्रेम का दूसरे से प्रयोजन ही नहीं है।
प्रेम है जीने का एक ढंग।
और अप्रेम भी जै जीने का ही ढंग।
प्रेम है फूल की भांति जीना।
अप्रेम है कांटे की भांति जीना।
लेकिन, कांटे दूसरों को चुभते हैं--अप्रेम स्वयं की ही छाती में चुभ जाता है।
और फूल दूसरों को सुगंध देते हैं--प्रेम स्वयं को ही सुगंध से भर जाता है।

रजनीश के प्रणाम
26-2-1971

(प्रतिः श्रीमती बासंती बखारिया, खेड़ा कैंप, गुजरात)

143 / मिटने की तैयारी ही है--प्रेम को पाने की कुंजी

प्यारी उर्मिला,
प्रेम। अहंकार विष है।
उससे ही प्रेम विषाक्त होता है।
प्रेम के लिए अहंकार को शूली देनी पड़ती है।
प्रेम को अहंकार का आभूषण नहीं बनाया जा सकता है।
यद्यपि सदा वैसी ही चेष्टा चलती है।
इसलिए प्रेम के नाम पर सिर्फ रोग ही हाथ लगता है।
और अंततः विषाद--अर्थहीन विषाद जीवन को अंधेरे की भांति घेर लेता है।

73

प्रेम के द्वार के बाहर ही स्वयं को छोड़ देता है और अहंकार शून्य हो प्रेम के मंदिर में प्रवेश करता है वह अनायास ही प्रार्थना को उपलब्ध हो जाता है।
मिलने की तैयारी दिखा--क्योंकि वही प्रेम को पाने की कुंजी है।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971
पुनश्चः अप्रैल में आबू में साधना-शिविर है--आ सके वहां तो प्रार्थना में उत्तर सके या फिर कभी बंबई आकर मिलना--वैसे आबू आना बहुत उपादेय होगा। (प्रतिः सुश्री उर्मिला, गोरखपुर)

144 / बेशर्त, अपेक्षारहित प्रेम की सुवास

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रेम है बेशर्त दान।
बेशर्त अर्थात अपेक्षा रहित।
जहां अपेक्षा है वहीं प्रेम विषाक्त है।
और विषाक्त प्रेम घृणा से भी बदतर हो जाता है।
फिर प्रेम संबंध (त्तमसंजपवदेपीच) भी नहीं है।
उसमें संबंधों के फलू लगें यह अलग बात है।
प्रेम मूलतः मनोदशा (एजंजम वि ऊपदक) है।
जैसे दिया जले अंधकार में, ऐसे ही हृदय में प्रेम जलता है।
किसी के लिए नहीं--जो भी निकट है उसी के लिए।
जैसे फूल खिले ऐसे ही प्रेम खिलता है।
स्वयं के ही लिए--स्वांतः सुखाय।
पर जो भी आए आप उसे सुगंध तो मिलती ही है।
बेशर्त (न्नदबवदकपजवदंस)।
अपेक्षा-रहित।
स्वयं के आधिक्य से।
और कोई पास न आए तो भी तो दिया जलता है एकांत में--तो भी तो फूल खिलता
है निर्जन में।
ऐसे जलो--ऐसे ही खिलो।

रजनीश के प्रणाम।
29-1-1971

(प्रतिः श्री विनुकुमार एच. सुथार, पाटन, गुजरात)

145 / प्रेम को पूजा बना

प्यारी उर्मिला,
प्रेम। प्रेम को पूजा बना।
प्रिय को प्रभुमय देख।
प्रिय को प्रभु जान कर ही सेवा कर।
अपेक्षाएं छोड़ दे सब--वे ही प्रेम को प्रार्थना नहीं बनने देती हैं।
प्रेम ने बिना दिए मांगा कुछ कि वह काम बना।
प्रेम ने बिना शर्त दिया सब कुछ कि वह प्रार्थना बना।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः सुश्री उर्मिला , गोरखपुर)

146 / प्रतीक्षारत प्रेम प्रार्थना बन जाता है

प्यारी रमा ,
प्रेम। प्रतीक्षा निखारती है --स्वच्छ करती है।
क्योंकि , प्रतीक्षा धैर्य है।
अधैर्य कुरूप करता है --चित्त को धुएं में भरता है।
क्योंकि , अधैर्य तनाव है।
प्रेम प्रतीक्षा बन सके तो प्रार्थना बन जाता है।
और प्रार्थना से निर्दोष और सुंदर और कुंआरी कोई भाव -दशा नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
17-2-1971

(प्रतिः सौ . रमा पटेल , अहमदाबाद)

147 / प्रेम प्रार्थना बनते ही दिव्य हो जाता है।

प्यारी उर्मिला ,
प्रेम। प्रेम तब तक पंगु ही है जब तक कि प्रार्थना न बन जाए।
क्योंकि प्रेम मानवीय है ; और इसलिए मनुष्य की सभी सीमाओं से आबद्ध है।
प्रेम प्रार्थना बनते ही दिव्य हो जाते है समस्त सीमाओं से मुक्त भी।
प्रेम के तीन रूप हैं --काम, प्रेम , प्रार्थना।
काम पाशविक है --निंदात्मक अर्थों में नहीं --बस, तत्य की दृष्टि से।
प्रेम मानवीय है।
प्रार्थना दिव्य है।
काम का तल शरीर है।
प्रेम का मन।
प्रार्थना का आत्मा।
प्रेम काम से शुरू हो यह स्वाभाविक है।
पर काम पर ही रुक जाए तो दुर्घटना है।
प्रेम मन को घेरे यह उपादेय है।
पर मन पर ही रुक जाए तो रुग्ण है।
प्रेम की पूर्णता तो प्रार्थना में ही है।

रजनीश के प्रणाम
11-2-1971

(प्रतिः सुश्री उर्मिला , गोरखपुर)

148 / साकार प्रेम और निराकार प्रार्थना

मेरे प्रिय ,
प्रेम। एकांत -निर्जन पथ पर खिले फूल की भांति ही हो रहो।
बिखेरो सुवास बेशर्त।
अपेक्षा -रहित।

फलाकांक्षा-शून्य।
कोई राह से निकले राहगीर तो ठीक।
और न निकले तो भी ठीक।
क्योंकि, जहां को भी नहीं, वहां भी प्रभु तो है ही।
राहगीर है तो प्रभु साकार है।
पथ निर्जन है तो प्रभु निराकार है।
साकार में प्रभु को देख पाना प्रेम है।
निराकार में देख पाना प्रार्थना।
प्रेम प्रार्थना बनता रहे, यही साधना है।

रजनीश के प्रणाम
15; 2-1971

(प्रतिः श्री विनय कुमार एच. सुथार, चाचरिया, पाटण, उत्तर गुजरात)

149 / प्रेम-गली अति सांकरी

प्यारी विमल,
प्रेम। प्रेम में जीना मुक्ति है।
ऐसे जियो जैसे सब ओर प्रभु है।
प्रियतम का स्मरण रहे: उठते-बैठते, जागते-सोते।
श्वास-श्वास में उसकी ही धुन हो।
और धीरे-धीरे स्वयं को भूलो: खो दो।
वही बचे और तुम न बचो।
तभी और केवल तभी उसे पाया जाता है।
स्वयं के रहते उससे मिलन नहीं है।
प्रेम की गली अति सांकरी है और उसमें दो के समाने का कोई उपाय नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
6-3-1971

(प्रतिः सुश्री विमला सिंहल, नीमच कैंट, नीमच म. प्र.)

150 / ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय

प्रिय दलजीत,
प्रेम। मैं जानता हूं कि तुम जो कहना चाहते हो, वह कह नहीं पाते हो।
लेकिन, कौन कह पाता है।
प्राणों के सागर के लिए शब्दों की गागर सदा ही छोटी पड़ती है।
जीवन सच ही एक अबूझ पहली है।
लेकिन, उन्हीं के लिए जो उसे बूझना चाहते हैं।
पर बूझना आवश्यक कहां है?
असली बात है जीना: बूझना नहीं।
जीवन जियो और फिर जीवन पहेली नहीं है।
फिर फिर जीवन एक रहस्य।
पहेली जीवन को गणित बना देती है।
गणित चिंता और तनाव को जन्माता है।
रहस्य जीवन को बना देता है काव्य।
और काव्य है विश्राम।

काव्य है रोमांस।
और जीवन के साथ जो रोमांस में है, वही धार्मिक है।
तर्क जीवन को समस्या (ढतवइसमउ) की भांति देखता है।
प्रेम जीवन को समाधान जानता है।
इसलिए तर्क अंततः उलझाता है।
और प्रेम समाधि बन जाता है।
समाधि अर्थात पूर्ण समाधान।
इसलिए कहता हूं कि जीवन को तर्क का अयास (द्मगमतबपेम) मत बनाओ; जीवन को बनाओ प्रेम का पाठ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

रजनीश के प्रणाम
30-12-1970

(प्रतिः श्री दलजीत सिंह, आई. टी. सी. मेहरचंद टेक्निकल इंस्टीटयूट, जालंधर पंजाब)